दादा भगवान परुपित

प्रेम

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन

अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद - 380009,
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2100

प्रथम संस्करण : 3000, प्रतियाँ, जून, 2010
रीप्रिन्ट : 3000, प्रतियाँ, सितम्बर, 2013
नई रीप्रिन्ट : 3000, प्रतियाँ, सितम्बर, 2016

भाव मूल्य : 'परम विनय' और 'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 20 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
B-99, इलेक्ट्रॉनिक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25,
गांधीनगर-382044.
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2142

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

‘दादा भगवान’ कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर ‘दादा भगवान’ पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। ‘मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?’ इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

‘व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं’, इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षुजनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को ‘दादा भगवान कौन?’ का रहस्य बताते हुए कहते थे कि “यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, वे तो ‘ए.एम.पटेल’ हैं। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे ‘दादा भगवान’ हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और ‘यहाँ’ हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।”

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करने वाला हूँ। बाद में अनुगामी चाहिए या नहीं चाहिए? बाद में लोगों को मार्ग तो चाहिए न?'

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आप श्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरू बहन अमीन (नीरू माँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरू माँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपक भाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरू माँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपक भाई देश-विदेश में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरू माँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त करके ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

संपादकीय

प्रेम शब्द इतना अधिक उलटा-पलटा गया है कि हमें पग-पग पर प्रश्न हुआ करता है कि इसे तो कहीं प्रेम कहते होंगे? प्रेम हो वहाँ ऐसा तो हो सकता है? सच्चा प्रेम कहाँ मिलेगा? सच्चा प्रेम किसे कहना?

प्रेम की यथार्थ परिभाषा तो प्रेममूर्ति ज्ञानी ही देते हैं। बढ़े नहीं, घटे नहीं, वह सच्चा प्रेम। जो चढ़ जाए और उतर जाए वह प्रेम नहीं, पर आसक्ति कहलाता है! जिसमें कोई अपेक्षा नहीं, स्वार्थ नहीं, मतलब नहीं या दोषदृष्टि नहीं, निरंतर एक समान रहे, फूल चढ़ाए वहाँ आवेग नहीं, गाली दे वहाँ अभाव नहीं, ऐसा अघट और अपार प्रेम, वही साक्षात् परमात्म प्रेम है! ऐसे अनुपम प्रेम के दर्शन तो ज्ञानी पुरुष में या संपूर्ण वीतराग भगवान में होते है।

मोह को भी अपने लोग प्रेम मानते हैं! मोह में बदले की आशा होती है! वह नहीं मिले तब जो अंदर विलाप होता है, उस पर से पता चलता है कि यह शुद्ध प्रेम नहीं था! प्रेम में सिन्सियारिटी होती है, संकुचितता नहीं होती। माँ का प्रेम व्यवहार में उच्च प्रकार का कहा गया है। फिर भी, वहाँ भी किसी कोने में अपेक्षा और अभाव आते हैं। मोह होने के कारण आसक्ति ही कहलाती है!

बेटा बारहवीं कक्षा में नब्बे प्रतिशत मार्क्स लाया हो तो माँ-बाप खुश होकर पार्टी देते हैं और बेटे की होशियारी के बखान करते नहीं थकते! और उसे स्कूटर ला देते हैं। वही बेटा चार दिन बाद फिर स्कूटर टकरा दे, स्कूटर का कचरघान कर डाले तो वे ही माँ-बाप उसे क्या कहते हैं? बगैर अक्कल का है, मूर्ख है, अब तुझे कुछ नहीं मिलेगा! चार दिन में तो सर्टिफिकेट वापिस ले लिया! प्रेम सारा ही उतर गया! इसे तो कहीं प्रेम कहा जाता है?

व्यवहार में भी बालक, नौकर या कोई भी प्रेम से ही वश हो सकता है, दूसरे सब हथियार बेकार सिद्ध होते है अंत में तो!

इस काल में ऐसे प्रेम के दर्शन हज़ारों को परमात्म प्रेम स्वरूप श्री दादा भगवान में हुए। एक बार जो कोई उनकी अभेदता चखकर गया, वह निरंतर उनके निदिध्यासन या तो उनकी याद में रहता है, संसार की सब जंजालों में जकड़ा हुआ होने के बावजूद भी!

हज़ारों लोगों को पूज्यश्री वर्षों तक एक क्षण भी बिसरते नहीं, वह इस काल का महान आश्चर्य है!! हज़ारों लोग पूज्यश्री के संसर्ग में आए, पर उनकी करुणा, उनका प्रेम हर एक पर बरसता हुआ सबने अनुभव किया। हर एक को ऐसा ही लगता है कि मुझ पर सबसे अधिक कृपा है, राजीपा (गुरजनों की कृपा और प्रसन्नता) है!

और संपूर्ण वीतरागों के प्रेम की तो वर्ल्ड में कोई मिसाल ही न मिले! एक बार वीतराग के, उनकी वीतरागता के दर्शन हो जाएँ, वहाँ खुद सारी ज़िन्दगी समर्पण हो जाए। उस प्रेम को एक क्षण भी भूल न सके!

सामनेवाला व्यक्ति किस प्रकार आत्यंतिक कल्याण को पाए, निरंतर उसी लक्ष्य के कारण यह प्रेम, यह करुणा फलित होती हुई दिखती है। जगत् ने देखा नहीं, सुना नहीं, श्रद्धा में नहीं आया, अनुभव नहीं किया, ऐसा परमात्म प्रेम प्रत्यक्ष में प्राप्त करना हो तो प्रेमस्वरूप प्रत्यक्ष ज्ञानी की ही भजना करनी। बाकी, वह शब्दों में किस तरह समाए?!

– डॉ. नीरू बहन अमीन के

जय सच्चिदानंद

प्रेम

प्रेम, शब्द अलौकिक भाषा का

प्रश्नकर्ता : वास्तव में प्रेम वस्तु क्या है? मुझे वह विस्तारपूर्वक समझना है।

दादाश्री : जगत् में यह जो प्रेम बोला जाता है न, वह प्रेम को नहीं समझने के कारण बोलते हैं। प्रेम की परिभाषा होगी या नहीं होगी? क्या डेफिनेशन है प्रेम की?

प्रश्नकर्ता : कोई अटेचमेन्ट कहता है, कोई वात्सल्य कहता है। बहुत तरह के प्रेम है।

दादाश्री : ना। असल में जिसे प्रेम कहा जाता है, उसकी परिभाषा तो होगी ही न?

प्रश्नकर्ता : मुझे आपसे किसी फल की आशा न हो, उसे हम सच्चा प्रेम कह सकते हैं?

दादाश्री : वह प्रेम है ही नहीं। प्रेम संसार में होता ही नहीं। वह अलौकिक तत्त्व है। संसार में जब से अलौकिक भाषा समझने लगता है, तब से ही उस प्रेम का उपादान होता है।

प्रश्नकर्ता : इस जगत् में प्रेम का तत्त्व जो समझाया है वह क्या है?

दादाश्री : जगत् में जो प्रेम शब्द है न, वह अलौकिक भाषा का शब्द है, वह लोकव्यवहार में आ गया है। बाकी, अपने लोग, प्रेम को समझते ही नहीं।

इसमें सच्चा प्रेम कहाँ?

आपमें प्रेम है?

आपके बच्चे पर आपको प्रेम है क्या?

प्रश्नकर्ता : होगा ही न!

दादाश्री : तो फिर मारते हो किसी दिन? किसी दिन मारा नहीं बच्चों को? डाँटा भी नहीं?

प्रश्नकर्ता : वह तो कभी डाँटना तो पड़ता ही है न!

दादाश्री : तब प्रेम ऐसी चीज़ है कि दोष नहीं दिखते। इसलिए दोष दिखते है वह प्रेम नहीं था। ऐसा आपको लगता है? मुझे इन सब पर प्रेम है। किसी का भी दोष मुझे दिखा नहीं अभी तक। तो आपका प्रेम किस पर है, वह कहो न मुझे? आप कहते हो, 'मेरे पास प्रेम की *सिलक* (जमापूंजी) है' तो कहाँ है वह?

सच्चा प्रेम होता है अहेतुकी

प्रश्नकर्ता : फिर तो ईश्वर के प्रति प्रेम, वही प्रेम कहलाता है न?

दादाश्री : ना। ईश्वर के प्रति भी प्रेम नहीं है आपको! प्रेम वस्तु अलग है। प्रेम किसी भी हेतु बगैर का होना चाहिए, अहेतुकी होना चाहिए। ईश्वर के साथ प्रेम तो दूसरों के साथ क्यों प्रेम नहीं करते? उनसे कुछ काम है आपको! मदर के साथ प्रेम है, वहाँ कोई काम है। पर प्रेम अहेतुकी होना चाहिए। यह मुझे आप पर भी प्रेम है और इन सब पर भी प्रेम है, पर मेरा हेतु नहीं है कोई इसके पीछे!

नहीं स्वार्थ प्रेम में

बाकी, यह तो जगत् में स्वार्थ है। 'मैं हूँ' ऐसा अहंकार है तब तक स्वार्थ है। और स्वार्थ रहे वहाँ प्रेम होता नहीं। जहाँ स्वार्थ हो वहाँ प्रेम रह नहीं सकता, और प्रेम हो वहाँ स्वार्थ रह नहीं सकता।

इसलिए जहाँ स्वार्थ न हो वहाँ पर शुद्ध प्रेम होता है। स्वार्थ कब नहीं होता? 'मेरा-तेरा' न हो तब स्वार्थ नहीं होता। 'मेरा-तेरा' है, वहाँ अवश्य स्वार्थ है और 'मेरा-तेरा' जहाँ है वहाँ अज्ञानता है। अज्ञानता के कारण 'मेरा-तेरा' हुआ। 'मेरा-तेरा' के कारण स्वार्थ है और स्वार्थ हो वहाँ प्रेम नहीं होता। और 'मेरा-तेरा' कब नहीं होता? 'ज्ञान' हो वहाँ 'मेरा-तेरा' नहीं होता। ज्ञान के बिना तो 'मेरा-तेरा' होता ही है न? फिर भी यह समझ में आए ऐसी वस्तु नहीं है।

जगत् के लोग प्रेम कहते हैं वह भ्रांति भाषा की बात है, छलने की बात है। अलौकिक प्रेम की हूंफ (संरक्षण, आश्रय) तो बहुत अलग ही होती है। प्रेम तो सबसे बड़ी वस्तु है।

ढाई अक्षर प्रेम के.....

इसलिए तो कबीर साहब ने कहा है,

'पुस्तक पढ़ पढ़ जग मूआ, पंडित भया न कोई,
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होई।'

प्रेम के ढाई अक्षर इतना ही समझे तो बहुत हो गया। बाकी, पुस्तक पढ़े उसे तो कबीर साहब इतनी बड़ी-बड़ी देते थे, ये पुस्तक तो पढ़कर जगत् मर गया, पर पंडित कोई हुआ नहीं। एक प्रेम के ढाई अक्षर समझने के लिए। परन्तु ढाई अक्षर प्राप्त हुए नहीं और भटक मरे। इसलिए पुस्तक में तो ऐसे देखते रहते हैं न, वह तो सब मेडनेस वस्तु है। परन्तु जो ढाई अक्षर प्रेम का समझा वह पंडित हो गया, ऐसा कबीर साहब ने कहा है। कबीर साहब की बातें सुनी हैं सभी?

प्रेम हो तो बिछड़ें कभी भी नहीं। यह तो सभी मतलबवाला प्रेम है। मतलबवाला प्रेम, वह प्रेम कहलाता है?

प्रश्नकर्ता : उसे आसक्ति कहा जाता है?

दादाश्री : है ही आसक्ति। और प्रेम तो अनासक्त योग है। अनासक्त योग से सच्चा प्रेम उत्पन्न होता है।

प्रेम की यथार्थ परिभाषा

दादाश्री : वोट इज़ द डेफिनेशन ऑफ लव?

प्रश्नकर्ता : मुझे पता नहीं। वह समझाइए।

दादाश्री : अरे, मैं ही बचपन से प्रेम की परिभाषा ढूंढ रहा था न! मुझे हुआ, प्रेम क्या होता होगा? ये लोग 'प्रेम-प्रेम' किया करते हैं, वह प्रेम क्या होगा? उसके बाद सभी पुस्तकें देखीं, सभी शास्त्र पढ़े, पर प्रेम की परिभाषा किसी जगह पर मिली नहीं। मुझे आश्चर्य लगा कि किसी भी शास्त्र में 'प्रेम क्या है', ऐसी परिभाषा ही नहीं दी?! फिर जब कबीर साहब की पुस्तक पढ़ी, तब दिल ठरा कि प्रेम की परिभाषा तो इन्होंने दी है। वह परिभाषा मुझे काम लगी। वे क्या कहते हैं कि,

'घड़ी चढ़े, घड़ी उतरे, वह तो प्रेम न होय,
अघट प्रेम ही हृदय बसे, प्रेम कहिए सोय।'

उन्होंने परिभाषा दी। मुझे तो बहुत सुंदर लगी थी परिभाषा, 'कहना पड़ेगा कबीर साहब, धन्य है!' यह सबसे सच्चा प्रेम। घड़ी में चढ़े और घड़ी में उतरे वह प्रेम कहलाएगा?!

प्रश्नकर्ता : तो सच्चा प्रेम किसे कहा जाता है?

दादाश्री : सच्चा प्रेम जो चढ़े नहीं, घटे नहीं वह! हमारा ज्ञानियों का प्रेम ऐसा होता है, जो कम-ज़्यादा नहीं होता। ऐसा हमारा सच्चा प्रेम पूरे वर्ल्ड पर होता है। और वह प्रेम तो परमात्मा है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी जगत् में कहीं तो प्रेम होगा न?

दादाश्री : किसी जगह पर प्रेम ही नहीं है। प्रेम जैसी वस्तु ही इस जगत् में नहीं है। सभी आसक्ति ही है। उल्टा बोलते हैं न, तब तुरन्त पता चल जाता है।

अभी आज कोई आए थे विलायत से, तो आज तो उनके साथ ही बैठे रहने में अच्छा लगता है। उसके साथ ही खाना-घूमना अच्छा

लगता है। और दूसरे दिन वह हमसे कहे, 'नोनसेन्स जैसे हो गए हो।' तो हो गया! और 'ज्ञानी पुरुष' को तो सात बार नोनसेन्स कहें तब भी कहेंगे, 'हाँ भाई, बैठ, तू बैठ।' क्योंकि 'ज्ञानी' खुद जानते हैं कि यह बोलता ही नहीं, यह रिकॉर्ड बोल रही है।

यह सच्चा प्रेम तो कैसा है कि जिसके पीछे द्वेष ही नहीं हो। जहाँ प्रेम में, प्रेम के पीछे द्वेष है, उस प्रेम को प्रेम कहा ही कैसे जाए? एकसा प्रेम होना चाहिए।

'प्रेम', वहीं पर परमात्मा

प्रश्नकर्ता : तो सच्चा प्रेम यानी कम-ज़्यादा नहीं होता।

दादाश्री : सच्चा प्रेम कम-ज़्यादा नहीं हो, वैसा ही होता है। यह तो प्रेम हुआ हो तो यदि कभी गालियाँ दें तो उसके साथ झगड़ा हो जाए, और फूल चढ़ाएँ तो वापिस हमसे चिपक जाता है।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में घटता-बढ़ता है उसी प्रकार ही होता है।

दादाश्री : इन लोगों का प्रेम तो सारे दिन कम-ज़्यादा ही होता रहता है न! बेटे-बेटियों सभी पर देखो न कम-ज़्यादा ही हुआ करता है न! रिश्तेदार, सभी जगह बढ़ता-घटता ही रहता है न! अरे, खुद अपने पर भी बढ़ता-घटता ही रहता है न! घड़ी में शीशे में देखे तो कहे, 'अब मैं अच्छा दिखता हूँ।' एक घड़ी बाद 'ना, ठीक नहीं है' कहेगा। यानी खुद पर भी प्रेम कम-ज़्यादा होता है। यह जिम्मेदारी नहीं समझने से ही यह सब होता है न! कितनी बड़ी जिम्मेदारी!

प्रश्नकर्ता : तब ये लोग कहते हैं न प्रेम सीखो, प्रेम सीखो!

दादाश्री : पर यह प्रेम ही नहीं है न! ये तो लौकिक बातें हैं। इसे प्रेम कौन कहे फिर? लोगों का प्रेम जो घटता-बढ़ता होता है वह सब आसक्ति, निरी आसक्ति है! जगत् में आसक्ति ही है। प्रेम जगत् ने देखा नहीं है। हमारा शुद्ध प्रेम है इसलिए लोगों पर असर होता है, लोगों को फायदा होता है, नहीं तो फायदा ही नहीं हो न! एकबार

कभी ज्ञानी पुरुष या भगवान हों तब प्रेम देखता है, प्रेम में कम-ज़्यादा नहीं होता, अनासक्त होता है, वैसा ज्ञानियों का प्रेम वही परमात्मा है। सच्चा प्रेम वही परमात्मा है, दूसरी कोई वस्तु परमात्मा है नहीं। सच्चा प्रेम, वहाँ परमात्मापन प्रकट होता है!

सदा अघट, 'ज्ञानी' का प्रेम

प्रश्नकर्ता : तो फिर इस प्रेम के प्रकार कितने हैं, कैसे हैं, वह सब समझाइए न!

दादाश्री : दो ही प्रकार के प्रेम हैं। एक घटने-बढ़नेवाला, घटे तब आसक्ति कहलाता है और बढ़े तब आसक्ति कहलाता है। और एक घटता-बढ़ता नहीं है वैसा अनासक्त प्रेम, वैसा ज्ञानियों को होता है।

ज्ञानी का प्रेम तो शुद्ध प्रेम है। ऐसा प्रेम कहीं भी देखने को नहीं मिले। दुनिया में जहाँ आप देखते हो, वह सारा ही प्रेम मतलबवाला प्रेम है। पत्नी-पति का, माँ-बाप का, बाप-बेटे का, माँ-बेटे का, सेठ-नौकर का, हर एक का प्रेम मतलबवाला होता है। मतलबवाला है, वह कब समझ में आता है कि जब वह प्रेम फ्रेक्चर हो जाए। जब तक मीठास बरतती है तब तक कुछ नहीं लगता, पर कड़वाहट खड़ी हो तब पता चलता है। अरे, पूरी ज़िन्दगी बाप के संपूर्ण कहे में रहा हो और एक ही बार गुस्से में, संयोगवश यदि बाप को बेटा 'आप बगैर अक्कल के हो' ऐसा कहे, तो पूरी ज़िन्दगी के लिए संबंध टूट जाता है। बाप कहे, तू मेरा बेटा नहीं और मैं तेरा बाप नहीं। यदि सच्चा प्रेम हो तब तो वह हमेशा के लिए वैसे का वैसा ही रहे, फिर गालियाँ दे या झगड़ा करे। उसके सिवा के प्रेम को तो सच्चा प्रेम किस तरह कहा जाए? मतलबवाला प्रेम, उसे ही आसक्ति कहा जाता है। वह तो व्यापारी और ग्राहक जैसा प्रेम है, सौदेबाज़ी है। जगत् का प्रेम तो आसक्ति कहलाता है। प्रेम तो उसका नाम कहलाता है कि साथ ही साथ रहना अच्छा लगे। उसकी सारी ही बातें अच्छी लगे। उसमें एक्शन और रिएक्शन नहीं होते। प्रेम प्रवाह तो एक सरीखा ही बहा करता है। घटता-बढ़ता नहीं है, पूरण-गलन नहीं होता। आसक्ति पूरण-गलन स्वभाव की होती है।

कोई बेटा अक्कल बगैर की बात करे कि 'दादाजी, आपको तो मैं अब खाने पर भी नहीं बुलाऊँगा और पानी भी नहीं पिलाऊँगा', तब भी इन 'दादाजी' का प्रेम उतरे नहीं और वह अच्छा भोजन खिलाया करे तो भी 'दादाजी' का प्रेम चढ़े नहीं, उसे प्रेम कहा जाता है। यानी भोजन करवाए तो भी प्रेम और न करवाए तो भी प्रेम, गालियाँ दे तो भी प्रेम और गालियाँ न दे तो भी प्रेम, सब तरफ प्रेम ही दिखता है। इसलिए सच्चा प्रेम तो हमारा कहलाता है। वैसे का वैसा ही है न? पहले दिन जो था, वैसे का वैसा ही है न? अरे, आप मुझे बीस साल के बाद मिलो न तो भी प्रेम बढ़े-घटे नहीं, प्रेम वैसे का वैसा ही दिखे!

स्वार्थ बिना का स्नेह नहीं संसार में

प्रश्नकर्ता : माता का प्रेम अधिक अच्छा माना जाता है, इस व्यवहार में।

दादाश्री : फिर दूसरे नंबर पर?

प्रश्नकर्ता : दूसरे कोई नहीं। दूसरे सब स्वार्थ के प्रेम।

दादाश्री : ऐसा? भाई-वाई सभी स्वार्थ? ना, आपने प्रयोग करके नहीं देखा होगा?

प्रश्नकर्ता : सभी अनुभव है।

दादाश्री : और ये लोग रोते हैं न, वे भी सच्चे प्रेम का नहीं रोते हैं, स्वार्थ के लिए रोते हैं। और यह तो प्रेम ही नहीं है। यह तो सब आसक्ति कहलाती है। स्वार्थ से आसक्ति उत्पन्न होती है। घर में हमें सभी के साथ घट-बढ़ बिना का प्रेम रखना है। परन्तु उन्हें क्या कहना है कि, 'आपके बगैर हमें अच्छा नहीं लगता।' व्यवहार से तो बोलना पड़ता है न! परन्तु प्रेम तो घट-बढ़ बगैर का रखना चाहिए।

इस संसार में यदि कोई कहेगा, 'तो स्त्री का प्रेम वह प्रेम नहीं है?' तब मैं समझाता हूँ कि जो प्रेम घटे-बढ़े वह सच्चा प्रेम ही नहीं है।

आप हीरे के टोप्स लाकर दो, उस दिन बहुत प्रेम बढ़ जाता है, और फिर टोप्स न लाए तो प्रेम घट जाता है, उसका नाम प्रेम नहीं कहलाता।

प्रश्नकर्ता : सच्चा प्रेम कम-ज़्यादा नहीं होता, तो उसका स्वरूप कैसा होता है?

दादाश्री : वह कम-ज़्यादा नहीं होता। जब देखो तब प्रेम वैसा का वैसा ही दिखता है। यह तो आपका काम कर दें तब तक उसका प्रेम आपके साथ रहता है, और काम न करके दें तो प्रेम टूट जाता है, उसे प्रेम कहा ही कैसे जाए?

इसलिए सच्चे प्रेम की परिभाषा क्या? फूल चढ़ानेवाले और गालियाँ देनेवाले, दोनों पर समान प्रेम हो, उसका नाम प्रेम। दूसरी सभी आसक्तियाँ। यह प्रेम की डेफिनेशन कहता हूँ। प्रेम ऐसा होना चाहिए। वही परमात्म प्रेम है और यदि वह प्रेम उत्पन्न हुआ तो दूसरी कोई ज़रूरत ही नहीं। यह तो प्रेम की ही क़ीमत है सब!

मोहवाला प्रेम, बेकार

प्रश्नकर्ता : मनुष्य प्रेम के बिना जी सकता है क्या?

दादाश्री : जिसके साथ प्रेम किया उसने लिया डायवोर्स, तो फिर किस तरह जीए वह?! क्यों बोलते नहीं? आपको बोलना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : सच्चा प्रेम हो तो जी सकता है। यदि मोह होता हो तो नहीं जी सकता।

दादाश्री : सही कहा यह। हम प्रेम करें तब वह डायवोर्स लें, तो किस काम का ऐसा प्रेम! वह प्रेम कहलाए ही कैसे? अपना प्रेम कभी भी न टूटे ऐसा होना चाहिए, चाहे जो हो फिर भी प्रेम न टूटे। मतलब सच्चा प्रेम हो तो जी सकता है।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ मोह हो तो नहीं जी सकता।

दादाश्री : मोहवाला प्रेम तो बेकार है सारा। तब ऐसे प्रेम में मत फँसना। परिभाषावाला प्रेम होना चाहिए। प्रेम के बिना मनुष्य जी नहीं सकता, वह बात सच्ची है, पर प्रेम परिभाषावाला होना चाहिए।

प्रेम की परिभाषा आपको समझ में आई? वैसा प्रेम ढूंढो। अब ऐसा प्रेम मत ढूंढना कि कल सुबह वह डायवोर्स ले ले। इनके क्या ठिकाने?!

प्रश्नकर्ता : प्रेम और मोह, उसमें मोह में न्योछावर होने में बदले की आशा है और इस प्रेम में बदले की आशा नहीं है, तो प्रेम में न्योछावर हो जाए तो पूर्ण पद को प्राप्त करेगा?

दादाश्री : इस दुनिया में कोई भी व्यक्ति सत्य प्रेम की शुरूआत करे तो भगवान हो जाए। सत्य प्रेम बिना मिलावटवाला होता है। उस सत्य प्रेम में विषय नहीं होता, लोभ नहीं होता, मान नहीं होता। वैसा बिना मिलावटवाला प्रेम, वह भगवान बना देता है, संपूर्ण बना देता है। रास्ते तो सभी आसान है, पर ऐसा होना मुश्किल है न!

प्रश्नकर्ता : उसी प्रकार किसी भी मोह के पीछे जीवन न्योछावर करने की शक्ति ले तो परिणामस्वरूप पूर्णता आती है? तो वह ध्येय की पूर्णता को प्राप्त करता है?

दादाश्री : यदि मोह के पीछे न्योछावर करे तब तो फिर मोह ही प्राप्त करेगा और मोह ही प्राप्त किया है न लोगों ने!

प्रश्नकर्ता : ये लड़के-लड़कियाँ प्रेम करते हैं अभी के जमाने में, वे मोह से करते हैं इसलिए फेल होते हैं?

दादाश्री : सिर्फ मोह! ऊपर चेहरा सुंदर दिखता है, इसलिए प्रेम दिखता है, पर वह प्रेम कहलाता नहीं न! अभी यहाँ पर एक फुँसी हो जाए न तो पास में जाए नहीं फिर। यह तो आम अंदर से चखकर देखें न तब पता चले। मुँह बिगड़ जाए तो बिगड़ जाए पर महीने तक खाने का अच्छा नहीं लगता। यहाँ बारह महीनों तक इतनी बड़ी फुँसी हो जाए न तो मुँह न देखे, मोह छूट जाए और जब सच्चा

प्रेम हो तो एक फुँसी, अरे दो फुँसियाँ हों, तब भी न छूटे। तो ऐसा प्रेम ढूंढ निकालना। नहीं तो शादी ही मत करना। नहीं तो फँस जाओगे। फिर वह मुँह चढ़ाएगी तब कहेंगे, 'इसका मुँह देखना मुझे पसंद नहीं है।' 'अरे, अच्छा देखा था उससे तुझे पसंद आया था न, अब ऐसा नहीं पसंद?' यह तो मीठा बोलते हैं न इसलिए पसंद आता है। और कड़वा बोले तो कहेंगे, 'मुझे तेरे साथ पसंद ही नहीं लगता।'

प्रश्नकर्ता : वह भी आसक्ति ही है न?

दादाश्री : सभी आसक्ति। 'पसंद आया और नहीं पसंद, पसंद आया और नहीं पसंद' ऐसे कलह करता रहता है। ऐसे प्रेम का क्या करना?

मोह में दगा-मार

बहुत मार खाएँ तब जो मोह था न वह मोह छूट जाता है सारा। सिर्फ मोह ही था। उसका ही मार खाते रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : मोह और प्रेम, इन दोनों के बीच की भेदरेखा क्या है?

दादाश्री : यह पतंगा है न, यह पतंगा दीये के पीछे पड़कर और याहोम हो जाता है न? वह खुद की ज़िन्दगी खतम कर डालता है, वह मोह कहलाता है। जब कि प्रेम टिकता है, प्रेम टिकाऊ होता है, वह मोह नहीं होता।

मोह मतलब यूज़लेस जीवन। वह तो अंधे होने के बराबर है। अंधा व्यक्ति कीड़े की तरह घूमता है और मार खाता है, उसके जैसा। और प्रेम तो टिकाऊ होता है। उसमें तो सारी ज़िन्दगी का सुख चाहिए होता है। वह तात्कालिक सुख ढूंढे ऐसा नहीं न!

यानी यह सब मोह ही है न! मोह मतलब खुला दगा-मार। मोह मतलब हंड्रेड परसेन्ट दगे निकले हैं।

प्रश्नकर्ता : पर यह मोह है और यह प्रेम है ऐसा सामान्य व्यक्ति को किस तरह पता चले? एक व्यक्ति को सच्चा प्रेम है या यह उसका मोह है, ऐसा खुद को कैसे पता चले?

दादाश्री : वह तो झिड़कें, तब अपने आप पता चलता है। एक दिन झिड़क दें और वह चिढ़ जाए, तब समझ लें कि यह युज़लेस है! फिर दशा क्या हो? इससे तो पहले से ही खड़काएँ। रुपया खड़काकर देखते हैं, कलदार है या खोटा है वह तुरन्त पता चल जाता है न? कोई बहाना निकालकर और खड़काएँ। अभी तो निरे भयंकर स्वार्थ! स्वार्थ के लिए भी कोई प्रेम दिखाता है। पर एक दिन खड़काकर देखें तो पता चले कि यह सच्चा प्रेम है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : सच्चा प्रेम हो वहाँ कैसा होता है, खड़काए तब भी?

दादाश्री : वह खड़काए तब भी शांत रहकर खुद उसे नुकसान न हो वैसा करता है। सच्चा प्रेम हो, वहाँ गले उतार लेता है। अब, बिलकुल बदमाश हो न तो वह भी गले उतार लेता है।

वह प्रेम या बला?

प्रश्नकर्ता : दो लोग प्रेमी हों और घरवालों का साथ नहीं मिले तो आत्महत्या कर लेते हैं। ऐसा बहुत बार होता है तो वह प्रेम है, उसे क्या प्रेम माना जाएगा?

दादाश्री : आवारा प्रेम! उसे प्रेम ही कैसे कहा जाए? इमोशनल होते हैं और पटरी पर सो जाते हैं! और कहेंगे, 'अगले भव में दोनों साथ में ही होंगे।' तो वह ऐसी आशा किसी को करनी नहीं चाहिए। वे उनके कर्म के हिसाब से फिरते हैं। वे वापिस इकट्ठे ही नहीं होंगे!!

प्रश्नकर्ता : इकट्ठे होने की इच्छा हो तब भी इकट्ठे होते ही नहीं?

दादाश्री : इच्छा रखने से कहीं दिन फिरते हैं? अगला भव तो कर्मों का फल है न! यह तो इमोशनलपन है।

आप छोटे थे तब ऐसी बला लिपटी थी किसी तरह की? तब पुरावे (प्रूफ) इकट्ठे होते हैं, सब एविडेन्स इकट्ठे होते हैं, तब फिर बला लिपट जाती है।

प्रश्नकर्ता : बला क्या है?

दादाश्री : हाँ, वह मैं बताऊँ। एक नागर ब्राह्मण था, वह ऑफिसर था। वह उसके बेटे को कहता है, 'यह तू घूम रहा था, मैंने तुझे देखा था, तू साथ में बला किसलिए लेकर घूमता है?' लड़का कॉलेज में पढ़ता था, किसी गर्लफ्रेन्ड के साथ उसके बाप ने देखा होगा। उसे बला ये लोग नहीं कहते, पर ये पुराने ज़माने के लोग उसे बला कहते हैं। क्योंकि फादर के मन में ऐसा हुआ कि 'यह मूर्ख आदमी समझता नहीं, प्रेम क्या है वह। प्रेम को समझता नहीं और मार खा जाएगा। यह बला लिपटी है, इसलिए मार खा-खाकर मर जाएगा।' प्रेम को निभाना वह आसान नहीं है। प्रेम करना सभी को आता है, पर उसे निभाना आसान नहीं है। इसलिए उसके फादर ने कहा कि, 'यह बला किसलिए खड़ी की?'

तब वह लड़का कहता है, 'बापूजी, क्या कहते हो यह आप? वह तो मेरी गर्लफ्रेन्ड है। आप इसे बला कहते हो यों? मेरी नाक कट जाए ऐसा बोलते हो? ऐसा नहीं बोलते।' तब बाप कहता है, 'नहीं बोलूँगा अब।' उस गर्लफ्रेन्ड के साथ दो वर्ष दोस्ती चली। फिर वह दूसरे किसी के साथ सिनेमा देखने आई थी और वह उसने देख लिया। इसलिए उसके मन में ऐसा लगा कि यह तो पापाजी कह रहे थे कि 'यह बला लिपटाई है', यानी वैसी यह बला ही है।

इसलिए पुरावे (घटक, परिस्थितियाँ) मिल जाएँ न तो बला लिपट जाती है, फिर छूटता नहीं और दूसरों को लेकर फिरें तब फिर रात-दिन लड़के को नींद ही नहीं आती। होता है या नहीं होता ऐसा? उस लड़के ने जब जाना कि 'यह तो बला ही है। मेरे पापा कहते थे वह सच्ची बात है।' तब से वह बला छूटने लगी। मतलब, जब तक गर्लफ्रेन्ड कहे और उसे बला समझे नहीं तब तक किस तरह छूटे?!

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह मोह और प्रेम, उसका निर्णय करना हो तो किस तरह किया जा सकता है?

दादाश्री : प्रेम है ही नहीं, तो फिर प्रेम की बात किसलिए

करते हो? प्रेम है ही नहीं। सब मोह ही है यह तो। मोह! मूर्छित हो जाता है। बेभानपन, बिलकुल भान ही नहीं!

सिन्सियारिटी वहाँ सच्चा प्रेम

सामनेवाले से कलमो (नियम) चाहे जितनी टूटें, सब आमने-सामने दिए हुए जो वचन चाहे जितने तोड़ें परन्तु फिर भी सिन्सियारिटी जाए नहीं, सिन्सियारिटी सिर्फ वर्तन में ही नहीं पर आँखों में भी नहीं जानी चाहिए, तब समझना कि यहाँ प्रेम है। इसलिए वैसा प्रेम ढूंढना। इसे प्रेम मानना नहीं। यह बाहर जो चला है, वह बाज़ारू प्रेम-आसक्ति है। वह विनाश लाएगा। फिर भी छुटकारा नहीं है। उसके लिए मैं आपको रास्ता बताऊँगा। आसक्ति में पड़े बगैर भी छुटकारा ही नहीं है न!

भगवत् प्रेम की प्राप्ति

प्रश्नकर्ता : तो ईश्वर का परम, पवित्र, प्रबल प्रेम संपादन करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आपको ईश्वर का प्रेम प्राप्त करना है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, करना है। अंत में हरएक मनुष्य का ध्येय यही है न? मेरा प्रश्न यहीं पर है कि ईश्वर का प्रेम संपादन करें किस तरह?

दादाश्री : प्रेम तो यहाँ सभी लोगों को करना होता है, पर मीठा लगे तो करे न? उस तरह से ईश्वर कहीं भी मीठा लगा हो, वह मुझे दिखाओ न!

प्रश्नकर्ता : क्योंकि यह जीव अंतिम क्षण में जब देह छोड़ता है, फिर भी ईश्वर का नाम नहीं ले सकता।

दादाश्री : किस तरह ईश्वर का नाम ले सकेगा? उसे जहाँ रुचि हो न, वह नाम ले सकेगा। जहाँ रुचि, वहाँ उसकी खुद की रमणता होती है। ईश्वर में रुचि ही नहीं और इसलिए ईश्वर में रमणता ही नहीं है। वह तो जब भय लगे, तब ईश्वर याद आते हैं।

प्रश्नकर्ता : ईश्वर में रुचि तो होती है, फिर भी कुछ आवरण ऐसे बंध जाते हैं इसलिए ईश्वर का नाम नहीं ले सकते होंगे।

दादाश्री : परन्तु ईश्वर पर प्रेम आए बगैर किसका नाम लें वे? ईश्वर पर प्रेम आना चाहिए न! और ईश्वर को प्रेम बहुत करे उसमें क्या फायदा? मेरा कहना है कि यह आम होता है, वह मीठा लगे तो प्रेम होता है और कड़वा लगे या खट्टा लगे तो? वैसे ही ईश्वर कहाँ पर मीठा लगा, कि आपको प्रेम हो?

ऐसा है, जीव मात्र के अंदर भगवान बैठे हुए हैं, चेतनरूप में है, कि जो चेतन जगत् के लक्ष्य में ही नहीं और जो चेतन नहीं है, उसे चेतन मानते हैं। इस शरीर में जो भाग चेतन नहीं है, उसे चेतन मानते हैं और जो चेतन है वह उसके लक्ष्य में ही नहीं, भान में ही नहीं। अब वह शुद्ध चेतन मतलब शुद्धात्मा और वही परमेश्वर है। उसका नाम कब याद आएगा? कि जब हमें उसकी तरफ से कुछ लाभ हो और तभी उन पर प्रेम आता है। जिन पर प्रेम आए न, वे हमें याद आते हैं तो उनका नाम ले सकते हैं। इसलिए प्रेम आए ऐसे हमें मिलें, तब वे हमें याद रहा करते हैं। आपको 'दादा' याद आते हैं?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उन्हें प्रेम है आप पर, इसलिए याद आते हैं। अब प्रेम क्यों आया? क्योंकि 'दादा' ने कोई सुख दिया है कि जिससे प्रेम उत्पन्न हुआ, और वह प्रेम उत्पन्न हो तब फिर भूला ही नहीं जाता न! वह याद ही नहीं करना होता।

यानी भगवान याद कब आते हैं? कि भगवान अपने पर कुछ कृपा दिखाएँ, हमें कुछ सुख दें, तब याद आते हैं। एक आदमी मुझे कहता है कि, 'मुझे पत्नी के बिना अच्छा ही नहीं लगता।' अरे, किस तरह? पत्नी न हो तो क्या होगा? तब वह कहता है, 'तब तो मैं मर जाऊँ।' अरे, पर किसलिए? तब वह कहता है, 'वह पत्नी तो सुख देती है।' और सुख न देती हो और मार मारती हो तब? तब भी उसे फिर याद आता है। इसलिए राग और द्वेष दोनों में याद आता रहता है।

पशु-पक्षियों में भी प्रेम

यानी वस्तु समझनी पड़ेगी न! अभी आपको ऐसा लगता है कि प्रेम जैसी वस्तु है इस संसार में?

प्रश्नकर्ता : अभी तो, बच्चों को प्यार करते हैं उसे ही प्रेम मानते हैं न!

दादाश्री : ऐसा? प्रेम तो ये चिड़िया को उसके बच्चों पर होता है। वह चिड़िया चैन से दाने लाकर और घोंसले में आती है, इसलिए वे बच्चे 'माँ आई, माँ आई' करके रख देते है। तब चिड़िया उन बच्चों के मुँह में दाने रख देती है। 'वह दानें कितने रखे रखती होगी अंदर मुँह में? और किस तरह एक-एक दाना निकालती होगी?' ऐसे मैं विचार में पड़ गया था। वह चारों ही बच्चों को एक-एक दाना मुँह में रख देती है।

प्रश्नकर्ता : पर उनमें आसक्ति कहाँ से आती है? उनमें बुद्धि नहीं है न!

दादाश्री : हाँ, वही मैं कहता हूँ न? इसलिए यह तो एक देखने के लिए कहता हूँ। असल में तो वह प्रेम माना ही नहीं जाता। प्रेम समझदारीपूर्वक का होना चाहिए। पर वह भी प्रेम माना नहीं जाता पर फिर भी अपने यहाँ दोनों का भेद समझाने के लिए उदाहरण देते हैं। अपने लोग नहीं कहते कि भाई, इस गाय को बछड़े पर कितना भाव है? आपको समझ आया न? उसके अंदर वह बदले की आशा नहीं होती न!

बदले की आशा, वहाँ आसक्ति

यानी आसक्ति कहाँ होती है? कि जहाँ उसके पास से कुछ बदले की आशा होती है, वहाँ आसक्ति होती है और बदले की आशा बिना के कितने लोग होंगे हिन्दुस्तान में?

एक आम का पेड़ उगाते हैं न अपने लोग, तो क्या आम को

उगाने के लिए ही उगाते हैं? 'किसलिए भाई, आम के पेड़ के पीछे इतनी सब झंझट करते हो?' तब वे कहते हैं, 'पेड़ बड़ा होगा न, तो मेरे बच्चों के बच्चे खाएँगे और पहले तो मैं खाऊँगा।' इसलिए फल की आशा से आम का पेड़ उगाता है। आपको क्या लगता है? कि निष्काम उगाता है? निष्काम कोई उगाता नहीं है?! इसलिए सभी खुद की चाकरी करने के लिए बच्चे बड़े करते होंगे न या भाखरी (रोटी) के लिए!

प्रश्नकर्ता : चाकरी करने के लिए।

दादाश्री : पर अभी तो भाखरी हो जाती है। मुझे एक आदमी कहता है, 'मेरा बेटा चाकरी नहीं करता।' तब मैंने कहा, 'फिर भाखरी नहीं करे तो क्या करेगा? अब कोई लड्डू बनो ऐसे हो नहीं, इसलिए भाखरी करे तो हल (!) आ जाएगा।'

माँ का प्रेम

प्रश्नकर्ता : पर शास्त्र में लिखा हुआ है कि माँ-बाप को खुद के बच्चों के प्रति एक समान ही प्रेम होता है, वह ठीक है?

दादाश्री : ना, माँ-बाप कोई भगवान नहीं कि एक समान प्रेम रहे! वैसा एक समान प्रेम तो भगवान रख सकते हैं। बाकी, माँ-बाप कोई भगवान नहीं हैं बेचारे, वे तो माँ-बाप हैं। वे तो पक्षपाती होते ही हैं। एक समान प्रेम तो भगवान ही रख सकते हैं। दूसरा कोई रख नहीं सकता। यह मुझे अभी एक समान प्रेम रहता है सबके ऊपर।

बाकी, यह तो लौकिक प्रेम है। वैसे ही लोग 'प्रेम-प्रेम' गाया करते हैं। यह तो पत्नी के साथ भी क्या प्रेम रहता होगा? ये सभी स्वार्थ के सगे हैं और ये माँ है न, वह तो मोह से ही जीती है। खुद के पेट से जन्मा इसलिए उसे मोह उत्पन्न होता है, और गाय को भी मोह उत्पन्न होता है, पर छह महीने तक उसका मोह रहता है, और इस मदर को तो साठ वर्ष का हो जाए तब भी मोह नहीं जाता।

प्रश्नकर्ता : पर माँ को बालक पर जब प्रेम होता है, तब निष्काम ही है न?

दादाश्री : नहीं है वह निष्काम प्रेम। माँ को बालक पर निष्काम प्रेम नहीं होता। वह तो लड़का फिर बड़ी उम्र का हो तब कहता है कि, 'आप तो मेरे बाप की पत्नी हो', तो? उस घड़ी पता चलेगा कि निष्काम था या नहीं? जब लड़का कहे कि 'आप मेरे फादर की वाइफ हो।' उस दिन माँ का मोह उतर जाता है कि, 'तू मुँह मत दिखाना।' अब फादर की वाइफ मतलब माँ नहीं? तब माँ कहती है, 'पर ऐसा बोला क्यों?' उसे भी मीठा चाहिए। सब मोह ही है।

इसलिए वह प्रेम भी निष्काम नहीं है। वह तो मोह की आसक्ति है। जहाँ मोह होता है और आसक्ति होती है, वहाँ निष्कामता होती नहीं। निष्काम मोह तो आसक्ति रहित होता है।

प्रश्नकर्ता : वह आपकी बात सच है। वह तो बालक बड़ा होता है फिर वैसी आसक्ति बढ़ती है। पर जब बालक छह महीने का छोटा हो तब?

दादाश्री : उस घड़ी भी आसक्ति ही है। पूरे दिन आसक्ति ही है। जगत् आसक्ति से ही बंधा हुआ है। जगत् में प्रेम नहीं हो सकता किसी जगह पर।

प्रश्नकर्ता : वैसा बाप को होता है ऐसा मान सकता हूँ, पर 'माँ' का दिमाग़ में उतरता नहीं ठीक से अभी मुझे।

दादाश्री : ऐसा है न, बाप स्वार्थी होता है, जब कि माँ बच्चों की ओर स्वार्थी नहीं होती। यानी इतना फर्क होता है। माँ को क्या रहता है? उसे बस आसक्ति ही, मोह!! दूसरा सब भूल जाती है, भान भूल जाती है। उसमें निष्काम एक क्षणभर को भी नहीं हो सकती। निष्काम तो हो नहीं सकता मनुष्य। निष्काम तो 'ज्ञानी' सिवाय कोई हो नहीं सकता। और ये जो सब निष्काम होकर फिरते हैं न, वे दुनिया का लाभ उठाते हैं। निष्काम का अर्थ तो होना चाहिए न?

डाँटने से पता चले

प्रश्नकर्ता : तो माता-पिता का प्रेम जो है, वह कैसा कहलाता है?

दादाश्री : माता-पिता को एक दिन गालियाँ दे न तो फिर वे आमने-सामने हो जाएँ। यह 'वर्ल्डली' प्रेम तो टिकता ही नहीं न! पाँच वर्षों में, दस वर्षों में भी उड़ जाता है वापिस किसी दिन। सामने प्रेम होना चाहिए, चढ़े-उतरे नहीं ऐसा प्रेम होना चाहिए।

फिर भी बच्चे पर बाप किसी समय जो गुस्सा करता है, उसमें हिंसकभाव नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : वह असल में तो प्रेम है?

दादाश्री : वह प्रेम है ही नहीं। प्रेम हो तो गुस्सा नहीं होता। पर हिंसकभाव नहीं है उसके पीछे। इसलिए वह क्रोध नहीं कहलाता। क्रोध हिंसकभाव सहित होता है।

व्यवहार में माँ का प्रेम उत्कृष्ट

सच्चा प्रेम तो किसी भी संयोगों में टूटना नहीं चाहिए। इसलिए प्रेम उसका नाम कहलाता है कि टूटे नहीं। यह तो प्रेम की कसौटी है। फिर भी थोड़ा-बहुत प्रेम है, वह माता का प्रेम है।

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा कहा कि माँ का प्रेम हो सकता है, बाप को नहीं होता। तो इन्हें बुरा नहीं लगेगा?

दादाश्री : फिर भी माँ का प्रेम है, उसका विश्वास होता है। माँ बच्चे को देखे, तब खुश। इसका कारण क्या है? कि बच्चे ने अपने घर में ही, अपने शरीर में ही नौ महीने मुकाम किया था। इसलिए माँ को ऐसा लगता है कि मेरे पेट से जन्मा है और उसको ऐसा लगता है कि माँ के पेट से मैं जन्मा हूँ। इतनी अधिक एकता हो गई है। माँ ने जो खाया उससे ही उसका खून बनता है। इसलिए यह एकता का प्रेम है एक प्रकार का। फिर भी वास्तव में रियली स्पीकिंग प्रेम नहीं है यह। रिलेटिवली स्पीकिंग प्रेम है। इसलिए सिर्फ प्रेम किसी जगह हो तो माँ के साथ होता है। वहाँ प्रेम जैसी कोई निशानी दिखती है। परन्तु वह भी पौद्‌गलिक प्रेम है और वह प्रेम है वह भी कितने

भाग में? कि जब मदर को अच्छी लगे ऐसी चीज़ हो, उस पर बेटे धावा बोलें तो दोनों लड़ते हैं, तब प्रेम फ्रेक्चर हो जाता है। बेटा अलग रहने चला जाता है। कहेगा, 'माँ, तेरे साथ नहीं रास आएगा।'

यह रिलेटिव सगाई है, रियल सगाई नहीं है। सच्चा प्रेम हो न तो बाप मर गया न, उसके साथ बेटा बीस वर्ष का हो वह भी साथ में जाए। उसका नाम प्रेम कहलाता है। ऐसे जाता है सही एक भी लड़का?!

प्रश्नकर्ता : कोई गया नहीं।

दादाश्री : अपवाद नहीं है कोई? बाप मर जाए तब लड़के को 'मेरे बापू मर गए', उसका इतना अधिक असर हो और वह भी उसके साथ मर जाने को तैयार हो जाए। ऐसी यहाँ मुंबई में घटना हुई है?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : तब शमशान में क्या करते हैं वहाँ जाकर फिर?

प्रश्नकर्ता : जला देते हैं।

दादाश्री : ऐसा? फिर आकर खाता नहीं होगा, नहीं? खाता है न! तो यह ऐसा है, औपचारिकता है, सब जानते हैं कि यह रिलेटिव सगाई है। गया वह तो गया। फिर घर आकर चैन से खाते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर कोई व्यक्ति मर जाए तो हम उसके प्रति मोह के कारण रोते हैं या शुद्ध प्रेम होता है, इसलिए रोते हैं?

दादाश्री : शुद्ध प्रेम किसी भी जगह होता ही नहीं दुनिया में। यह सारा मोह के लिए ही रोते हैं। स्वार्थ के बगैर तो यह दुनिया है ही नहीं। और स्वार्थ है, वहाँ मोह है। माँ के साथ भी स्वार्थ है। लोग ऐसा समझते हैं कि माँ के साथ शुद्ध प्रेम था। पर स्वार्थ के बिना तो माँ भी नहीं। पर वह लिमिटेड स्वार्थ है इसीलिए प्रशंसा की गई है उसकी, कम से कम-लिमिटेड स्वार्थ है। बाकी, वह भी मोह का ही परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है। पर माँ का प्रेम तो निःस्वार्थ हो सकता है न?

दादाश्री : होता ही है निःस्वार्थ काफी कुछ अंशों में। इसीलिए तो माँ के प्रेम को प्रेम कहा है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी आप उसे 'मोह है' ऐसा कहते हैं?

दादाश्री : ऐसा है, कोई कहेगा, 'भाई, प्रेम जैसी वस्तु इस दुनिया में नहीं है?' तो प्रमाण के तौर पर दिखाना हो तो माँ का प्रेम, वह प्रेम है। ऐसा दिखा सकते है कि यहाँ कुछ प्रेम है। बाकी, दूसरी बात में कोई माल नहीं। बेटे पर माँ का प्रेम होता है और अभी दूसरे सब प्रेम से अधिक यह प्रेम प्रशंसा करने जैसा है। क्योंकि उस प्रेम में बलिदान है।

प्रश्नकर्ता : मदर की जो इस प्रकार की हक़ीक़त है, तो पिताजी का क्या भाग होता है, ऐसा प्रेम.....

दादाश्री : पिताजी का मतलबवाला प्रेम। मेरा नाम रौशन करे वैसा है, कहेगा। सिर्फ एक माँ का ही थोड़ा-सा प्रेम, वह भी थोड़ा-सा ही वापिस। वह भी मन में होता है कि बड़ा होगा, मेरी चाकरी करेगा और श्राद्ध करेगा, तब भी बहुत हो गया मेरा। एक लालच है, कुछ भी उसके पीछे लालच है वहाँ प्रेम नहीं है। प्रेम वह वस्तु ही अलग है। अभी आप हमारा प्रेम देख रहे हो, पर यदि समझ आए तो। इस दुनिया में कोई चीज़ मुझे नहीं चाहिए, आप लाखों डॉलर दो या लाखों पाउन्ड दो! पूरे जगत् का सोना दो तो मेरे काम का नहीं है। जगत् की स्त्री संबंधी मुझे विचार नहीं आता। मैं इस शरीर से अलग रहता हूँ, पड़ोसी की तरह रहता हूँ। इस शरीर से अलग, पड़ोसी-'फर्स्ट नेबर'।

प्रेम समाया नोर्मेलिटी में

माँ वह माता का स्वरूप है। हम माताजी मानते हैं न, वह माँ का स्वरूप है। माँ का प्रेम सच्चा है। पर वह प्राकृत प्रेम है और

दूसरा, भगवान में ऐसा प्रेम होता है। यहाँ जिसे भगवान कहते हैं, वहाँ हमें पता लगाना चाहिए। वहाँ उल्टा करो, उल्टा बोलो तब भी प्रेम करते हैं और बहुत फूल चढ़ाएँ तब भी वैसा ही प्रेम करते हैं। वह घटता नहीं, बढ़ता नहीं, ऐसा प्रेम होता है। इसलिए उसे प्रेम कहा जाता है, और वह प्रेम स्वरूप, वही परमात्म स्वरूप है।

बाकी, जगत् ने प्रेम देखा ही नहीं। भगवान महावीर के जाने के बाद प्रेम शब्द देखा ही नहीं। सब आसक्ति है। इस संसार में प्रेम शब्द का उपयोग होता है वह तो आसक्ति के लिए उपयोग करते हैं। प्रेम यदि उसके लेवल में हो, नोर्मेलिटी में हो तब तक वह प्रेम कहलाता है। और नोर्मेलिटी छोड़े तब वह प्रेम फिर आसक्ति कहलाता है। मदर का प्रेम उसे प्रेम कहते ज़रूर है पर वह नोर्मेलिटी छूट जाती है, इसीलिए आसक्ति कहलाता है। बाकी, प्रेम वह परमात्म स्वरूप है। नॉर्मल प्रेम, वह परमात्म स्वरूप है।

गुरु-शिष्य का प्रेम

शुद्ध प्रेम से सभी दरवाज़े खुलते हैं। गुरु के साथ के प्रेम से क्या नहीं मिलता? सच्चे गुरु और शिष्य के बीच तो प्रेम का आंकड़ा इतना सुंदर होता है कि गुरु जो बोले वह उसे बहुत पसंद आता है। ऐसा तो प्रेम का आंकड़ा होता है। पर अभी तो इन दोनों में भी झगड़े चला करते हैं।

एक जगह पर तो शिष्य और गुरु महाराज, दोनों मारपीट कर रहे थे। तो मुझे एक जने ने कहा कि, 'चलिए ऊपर।' मैंने कहा, 'नहीं देखना चाहिए, अरे मुए, बुरा दिखता है। वह तो सब चलता रहता है। जगत् ऐसा ही है। सास-बहू नहीं लड़ते? वैसा ही यह भी! बैर बंधे हुए हैं, वे बैर पूरे होते रहते हैं। बैर बंधे हुए होते हैं। यदि प्रेम का जगत् होता तब तो सारे दिन ही उसके पास से उठना अच्छा नहीं लगता। लाख रुपये की कमाई हो तब भी कहेगा, रहने दो न! यह तो कमाई न हो तब भी बाहर चला जाता है मुआ! क्यों बाहर चला जाता है? घर में पसंद नहीं है, चैन पड़ता नहीं!

पति? नहीं, कम्पेनियन

ये तो सब रोंग बिलीफ़ हैं। 'मैं चंदूभाई हूँ', वह रोंग बिलीफ़ है। फिर घर पर जाएँ, तब हम कहें, 'यह कौन है?' तब वे कहते हैं, 'नहीं पहचाने? इस स्त्री का मैं पति हूँ।' ओहो बड़े पति आए! मानो पति का पति ही ना हो ऐसी बात करता है न? पति का पति कोई नहीं होता? तो फिर ऊपरवाले पति के हम पत्नी हुए और अपनी पत्नी ये हुई। ये क्या धांधली में पड़ें?! पति ही किसलिए बनें? हमारा कम्पेनियन है, कहें। फिर क्या हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : दादा यह बहुत मोर्डन भाषा का उपयोग किया।

दादाश्री : तब क्या?! टसल कम हो जाए न! हाँ, एक रूम में कम्पेनियन और वे, दोनों रहते हो, तो वह एक व्यक्ति चाय बनाए और दूसरा पीए, तब दूसरा उसके लिए उसका दूसरा काम कर दे। ऐसे करके कम्पेनियन चलता रहे।

प्रश्नकर्ता : कम्पेनियन में आसक्ति होती है या नहीं?

दादाश्री : उसमें भी आसक्ति होती है। पर वह आसक्ति इसके जैसी नहीं। यह तो शब्द ही ऐसे हैं आसक्तिवाले! ये शब्द गाढ़ आसक्तिवाले हैं। 'धणीपन और धणियाणी' इन शब्दों में ही इतनी गाढ़ आसक्ति है कि कम्पेनियन कहे तो आसक्ति कम हो जाती है।

नहीं है मेरी...

एक व्यक्ति थे, उनकी वाइफ बीस वर्ष पहले मर गई थी। तो दूसरे एक व्यक्ति ने मुझे कहा कि, 'इन चाचा को मैं रुलाऊँ?' मैंने कहा, 'किस तरह रुलाओगे? इतनी उमर में तो नहीं रोएँगे।' तब वे कहते हैं, 'देखो, वे कैसे सेन्सिटिव हैं!' फिर वह भतीजा बोला, 'क्या चाचा, चाची की तो बात ही मत पूछो। क्या उनका स्वभाव!' ऐसा वह बोल रहा था, तब वे चाचा वास्तव में रो पड़े! अरे, कैसे ये घनचक्कर! साठ वर्ष की उमर में अभी पत्नी के लिए रोना आता

है?! ये तो किस तरह के घनचक्कर हो? यह प्रजा तो वहाँ सिनेमा में भी रोती है न? उसमें कोई मर गया हो तो देखनावाला भी रो उठता है।

प्रश्नकर्ता : तो वह आसक्ति छूटती क्यों नहीं?

दादाश्री : वह तो नहीं छूटती। 'मेरी, मेरी' करके किया है न वह 'नहीं है मेरी, नहीं है मेरी' उसका जाप करें तब बंद हो जाए। वह तो जो पेच घुमाए हैं, तो वे छोड़ने ही पड़ेंगे न!

मतभेद बढ़े, वैसे प्रेम बढ़े?

मतभेद होता है या नहीं पत्नी के साथ? वाइफ के साथ मतभेद?

प्रश्नकर्ता : मतभेद के बिना तो हसबेन्ड-वाइफ कहलाते ही नहीं न?

दादाश्री : हें, ऐसा! ऐसा है, ऐसा नियम होगा? किताब में ऐसा नियम लिखा होगा कि मतभेद पड़े तभी हसबेन्ड और वाइफ कहलाते हैं? थोडें-बहुत मतभेद होते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो फिर हसबेन्ड और वाइफ कम होता जाता है, नहीं?

प्रश्नकर्ता : प्रेम बढ़ता जाता है।

दादाश्री : प्रेम बढ़ता जाए वैसे-वैसे मतभेद कम होते जाते हैं, नहीं?

प्रश्नकर्ता : जितने मतभेद बढ़ते जाएँ, जितने झगड़े बढ़ते जाएँ, उतना प्रेम बढ़ता जाता है।

दादाश्री : हाँ। वह प्रेम नहीं बढ़ता, वह आसक्ति बढ़ती है। प्रेम तो जगत् ने देखा ही नहीं। कभी भी प्रेम शब्द देखा ही नहीं जगत् ने। ये तो आसक्तियाँ हैं सभी। प्रेम का स्वरूप ही अलग प्रकार

का है। यह आप मेरे साथ बात कर रहे हो न, यह अभी आप प्रेम देख सकते हो, आप मुझे झिड़को, तब भी आपके ऊपर प्रेम रखूँगा। तब आपको लगेगा कि ओहोहो! प्रेमस्वरूप ऐसे होते हैं। बात सुनने में फायदा है कुछ यह?

प्रश्नकर्ता : पूरापूरा फायदा है।

दादाश्री : हाँ, सावधान हो जाना। नहीं तो मूर्ख बन गए समझो। और प्रेम होता होगा? आपमें है प्रेम, कि उसमें हो? अपने में प्रेम हो तो सामनेवाले में हो। अपने में प्रेम नहीं है, और सामनेवाले में प्रेम ढूंढते हैं हम कि 'आपमें प्रेम नहीं दिखता?' मुए, प्रेम ढूंढता है? वह प्रेमी नहीं है! यह तो प्रेम ढूंढता है?! सावधान हो जा, अभी प्रेम होता होगा? जो जिसके शिकंजे में आता है उसे भोगता है, लूटबाज़ी करता है।

इसमें प्रेम कहाँ रहा?

पति और पत्नी के प्रेम में पति यदि कमाकर न लाए तो प्रेम का पता चल जाए। बीवी क्या कहेगी, 'क्या चूल्हे में मैं तुम्हारा पाँव रखूँ?' पति कमाता न हो तो बीवी ऐसा न बोले? उस घड़ी उसका प्रेम कहाँ गया? प्रेम होता होगा इस जगत् में? यह तो आसक्ति है। यदि यह खाने-पीने का सब हो तो वह प्रेम (!) दिखता है और पति भी यदि बाहर कहीं फँसा हुआ हो तो वह कहेगी कि, 'आप ऐसा करोगे तो मैं चली जाऊँगी।' यानी पत्नी ऊपर से पति को झिड़कती है। वह तो बिचारा गुनहगार है, इसलिए नरम पड़ जाता है। और इसमें क्या प्रेम करने जैसा है फिर? यह तो जैसे-तैसे करके गाड़ी धकेलनी है। खाने-पीने का बीवी बना दे और हम पैसा कमाकर लाएँ हैं। इस तरह जैसे-तैसे करके गाड़ी आगे चली मियाँ-बीवी की!

आसक्ति वहाँ रिएक्शन ही

प्रश्नकर्ता : परन्तु बहुत बार हमें द्वेष नहीं करना हो तब भी द्वेष हो जाता है, उसका क्या कारण?

दादाश्री : किसके साथ?

प्रश्नकर्ता : कभी पति के साथ ऐसा हो तो?

दादाश्री : वह द्वेष नहीं कहलाता। हमेशा ही जो आसक्ति का प्रेम है न, वह रिएक्शनरी है। इसीलिए यदि चिढ़ें तब ये वापिस उल्टे चलते हैं। उल्टे चले इसलिए फिर थोड़े समय अलग रहे कि वापिस प्रेम चढ़ता है। और वापिस प्रेम लगे, तब टकराव होता है। और इसलिए फिर वापिस प्रेम बढ़ता है। जब बहुत अधिक प्रेम हो वहाँ गड़बड़ होंती है। इसलिए जहाँ कोई भी गड़बड़ चला करती हो न, वहाँ भीतर प्रेम है इन लोगों को! वह प्रेम हो तो ही बखेड़ा होता है। पूर्व भव का प्रेम है तो बखेड़ा होता है। बहुत अधिक प्रेम है। नहीं तो बखेड़ा हो ही नहीं न! इस बखेड़े का स्वरूप ही यह है।

उसे लोग क्या कहते हैं? 'टकराव होने से तो हमारा प्रेम होता है।' तब वह बात सच है पर। वहाँ आसक्ति टकराव से ही हुई है। जहाँ टकराव कम है, वहाँ आसक्ति नहीं होती। जिस घर में स्त्री-पुरुष के बीच टकराव कम होता है वहाँ आसक्ति कम है, ऐसा मान लेना। समझ में आए ऐसी बात है?

प्रश्नकर्ता : हाँ। और बहुत आसक्ति हो वहाँ अनदेखाई भी अधिक होती है न?

दादाश्री : वह तो आसक्ति में से ही सभी झमेला खड़ा होता है। जिस घर के दोनों जने आमने-सामने बहुत लड़ते हों न, तो हम समझ जाएँ कि यहाँ आसक्ति अधिक है। इतना समझ जाना। इसलिए फिर हम नाम क्या रखते हैं? 'लड़ते हैं' ऐसा नहीं कहते। तमाचा मारे आमने-सामने, तो भी हम उसे 'लड़ते हैं' ऐसा नहीं कहते। हम उसे तोतामस्ती कहते हैं। तोता ऐसे चोंच मारता है, (वो ऐसे चोंच मारता है) तब दूसरा तोता ऐसे चोंच मारता है, पर अंत में खून नहीं निकालते। हाँ, वह तोतामस्ती! आपने नहीं देखी है तोतामस्ती?

अब ऐसी सच्ची बात सुनें तब हमें अपनी भूलों पर और अपनी

मूर्खता पर हँसना आता है। सच्ची बात सुने तब मनुष्य को वैराग आता है कि हमने ऐसी भूलें की?! अरे, भूलें ही नहीं, पर मार भी बहुत खाई!

दोष, आक्षेप वहाँ प्रेम कहाँ से?

जगत् आसक्ति को प्रेम मानकर उलझता है। स्त्री को पति के साथ काम और पति को स्त्री के साथ काम, ये सब काम से ही खड़ा हुआ है। काम नहीं हो तो अंदर सभी चिल्लाते हैं, हल्ला करते हैं। संसार में एक मिनट भी अपना कोई हुआ ही नहीं है। अपना कोई होता नहीं है। वह तो जब अटके तब पता चले। एक घंटा बेटे को हम डाँटे तब पता चले कि बेटा अपना है या पराया है? दावा दायर करने के लिए भी तैयार हो जाता है। तब बाप भी क्या कहता है? 'मेरी अपनी कमाई है। तुझे एक पाई नहीं दूँगा' कहेगा। तब बेटा कहेगा, 'मैं आपको मार-ठोककर लूँगा।' इसमें *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है-ऐसा आरोपण/मेरापन) होता होगा? एक ज्ञानी पुरुष ही अपने होते हैं।

बाकी, इसमें प्रेम जैसी वस्तु ही नहीं है। इस संसार में प्रेम मत ढूंढना। किसी जगह पर प्रेम होता नहीं। प्रेम तो ज्ञानी पुरुष के पास होता है। दूसरे सभी जगह तो प्रेम उतर जाता है और फिर लड़ाई-झगड़े होते हैं बाद में। लड़ाई-झगड़े होते हैं या नहीं होते? वह प्रेम नहीं कहलाता। वह आसक्ति है सारी। उसे अपने जगत् के लोग प्रेम कहते हैं। उल्टा ही बोलना वह धंधा! प्रेम का परिणाम, झगड़े नहीं होते। प्रेम उसीका नाम कि किसीका दोष न दिखे।

प्रेम में कभी भी सारी ज़िन्दगी में बेटे का दोष नहीं दिखता, पत्नी का दोष नहीं दिखता, उसका नाम प्रेम कहलाता है। प्रेम में दोष दिखते ही नहीं उसे और यह तो लोगों को कितने दोष दिखते हैं? 'तू ऐसी और तू वैसी!' अरे, प्रेम कहता था न? कहाँ गया प्रेम? मतलब, नहीं है यह प्रेम। जगत् में कहीं प्रेम होता होगा? प्रेम का एक बाल जगत् ने देखा नहीं है। यह तो आसक्ति है।

और जहाँ आसक्ति हो, वहाँ आक्षेप हुए बगैर रहते ही नहीं। वह आसक्ति का स्वभाव है। आसक्ति हो इसलिए आक्षेप हुआ ही करते हैं न कि, 'आप ऐसे हो और आप वैसे हो।' 'आप ऐसे और तू ऐसी' ऐसा नहीं बोलते, नहीं? आपके गाँव में वहाँ नहीं बोलते या बोलते हैं? बोलते हैं! उस आसक्ति के कारण। पर जहाँ प्रेम है, वहाँ दोष ही नहीं दिखते हैं।

संसार में इन झगड़ों के कारण ही आसक्ति होती है। इस संसार में झगड़ा तो आसक्ति का विटामिन है। झगड़ा नहीं हो तब तो वीतराग हुआ जाए।

प्रेम तो वीतरागों का ही

ये लड़कियाँ पति पास करती हैं, ऐसे देखकर के पास करती हैं, फिर झगड़ती नहीं होगी? झगड़ती है? तब वह प्रेम कहलाए ही नहीं न! प्रेम तो कायम का ही होता है। जब देखो तब वही प्रेम, वैसा ही दिखता है। उसका नाम प्रेम कहलाता है, और वहाँ आश्वासन लिया जाता है।

यह तो हमें प्रेम आता हो और एक दिन वह रुठकर बैठी हो, तब किस काम का तेरा प्रेम! डालो गटर में यहाँ से। मुँह चढ़ाकर फिरती हो, उसके प्रेम का क्या करना है? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : कभी भी मुँह न बिगाड़े, वैसा प्रेम होना चाहिए। वह प्रेम हमारे पास मिलता है।

पति झिड़के तब भी प्रेम कम-ज़्यादा नहीं हो, वैसा प्रेम चाहिए। हीरे के टोप्स लाकर दें, उस घड़ी प्रेम बढ़ जाता है, वह भी आसक्ति। इसलिए यह जगत् आसक्ति से चल रहा है। प्रेम, वह तो ज्ञानी पुरुष से ठेठ भगवान तक होता है, उन लोगों के पास प्रेम का लाइसन्स होता है। वे प्रेम से ही लोगों को सुखी कर देते हैं। वे प्रेम से ही

बांधते हैं वापिस, छूट नहीं सकते। वह ठेठ ज्ञानी पुरुष के पास, ठेठ तीर्थंकर तक सभी प्रेमवाले, अलौकिक प्रेम! जिसमें लौकिक नाम मात्र को भी नहीं होता।

अति परिचय से अवज्ञा

जहाँ बहुत प्रेम आए, वहीं अरुची होती है, वह मानव स्वभाव है। जिसके साथ प्रेम हो, और बीमार हों तब उसके साथ ही ऊब होती है। वह अच्छा नहीं लगता अपने को। 'आप जाओ यहाँ से, दूर बैठो', कहना पड़ता है और पति के साथ प्रेम की आशा रखनी ही नहीं और वे अपने पास प्रेम की आशा रखे तो वह मूरख है। यह तो हमें काम से काम! जैसे होटलवाले के वहाँ घर बसाने जाते हैं हम? चाय पीने के लिए जाते हैं तो पैसे देकर वापिस! इस तरह काम से काम कर लेना है हमें।

प्रेम की लगनी में निभाए सभी भूलें

घरवालों के साथ 'नफा हुआ' कब कहलाता है कि घरवालों को अपने ऊपर प्रेम आए। अपने बिना अच्छा नहीं लगे, कि कब आएँ, कब आएँ ऐसा लगे। लोग शादी करते हैं पर प्रेम नहीं, यह तो मात्र विषय आसक्ति है। प्रेम हो तो चाहे जितना एक दूसरे में विरोधाभास आए फिर भी प्रेम नहीं जाए। जहाँ प्रेम नहीं हो वह आसक्ति कहलाता है। आसक्ति मतलब संडास! प्रेम तो पहले होता था कि पति परदेश गया हो न, वह वापिस न आए तो पूरी ज़िन्दगी उसमें ही चित्त रहता, दूसरा कोई याद ही नहीं आता। आज तो दो साल पति न आए तो दूसरा पति कर ले! इसे प्रेम कैसे कहा जाए? यह तो संडास है, जैसे संडास बदलते हैं, वैसा! जो गलन है, उसे संडास कहते हैं। प्रेम में तो अर्पणता होती है!

प्रेम मतलब लगनी लगे वह। और वह सारे दिन याद आता रहे। शादी दो रूप में परिणमित होती है, किसी समय आबादी में जाती है तो किसी समय बरबादी में जाती है। प्रेम बहुत छलके तो वापिस बैठ

जाता है। जो छलकता है, वह आसक्ति है। इसलिए जहाँ छलके, उससे दूर रहना। लगनी तो आंतरिक होनी चाहिए। बाहर का खोखा बिगड़ जाए, सड़ जाए तब भी प्रेम उतना का उतना ही रहे। यह तो हाथ जल गया हो और हम कहें कि, 'जरा धुलवा दो' तो पति कहेगा कि, 'ना, मुझसे नहीं देखा जाता!' अरे, उस दिन तो हाथ सहला रहा था, और आज क्यों ऐसा? यह घृणा कैसे चले? जहाँ प्रेम है वहाँ घृणा नहीं और जहाँ घृणा है वहाँ प्रेम नहीं। संसारी प्रेम भी ऐसा होना चाहिए कि जो एकदम कम न हो जाए और एकदम बढ़ न जाए। नोर्मेलिटी में होना चाहिए। ज्ञानी का प्रेम तो कभी भी कम-ज़्यादा नहीं होता। वह प्रेम तो अलग ही होता है। उसे परमात्म प्रेम कहते हैं।

प्रेम सब जगह होना चाहिए। पूरे घर में प्रेम ही होना चाहिए। जहाँ प्रेम है, वहाँ भूल नहीं निकालता कोई। प्रेम में भूल नहीं दिखती। और यह प्रेम नहीं, इगोइज़म है। मैं पति हूँ वैसा भान है। प्रेम उसका नाम कहलाए कि भूल न लगे। प्रेम में चाहे जितनी भूल हो तो निभा लेता है। आपको समझ में आता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी।

दादाश्री : इसलिए भूलचूक हो कि प्रेम के खातिर जाने देनी। इस बेटे पर आपको प्रेम हो न, तो भूल नहीं दिखेगी बेटे की। होगा भई, कोई हर्ज नहीं। प्रेम निभा लेता है सब। निभा लेता है न?!

बाकी, यह तो आसक्ति है सब! घड़ी में पत्नी है, वह गले में हाथ डालती है और चिपक जाती है और फिर घड़ी में वापिस बोलाचाली हो जाती है। 'तूने ऐसा किया, तूने ऐसा किया।' प्रेम में कभी भी भूल नहीं होती। प्रेम में भूल दिखती नहीं। यह तो प्रेम ही कहाँ है? नहीं चाहिए, भाई?

हमें भूल नहीं दिखे तो हम समझें कि इसके साथ प्रेम है हमें! वास्तव में प्रेम होगा इन लोगों को?!

मतलब इसे प्रेम कैसे कहे?!

बाकी, प्रेम देखने को नहीं मिलेगा इस काल में। जिसे सच्चा प्रेम कहा जाता है न, वह देखने को नहीं मिलेगा। अरे, एक व्यक्ति मुझे कहता है कि 'इतना अधिक मेरा प्रेम है, तब भी वह तिरस्कार करती है!' मैंने कहा, 'नहीं है यह प्रेम। प्रेम को तरछोड़ कोई मारे ही नहीं।'

पति ढूंढे अक्कल, पत्नी देखे होशियारी

तब जिस प्रेम में खुद अपने को ही होम दे, खुद की सेफसाइड रखे नहीं और खुद को होम दे, वह प्रेम सच्चा। वह तो अभी मुश्किल है बात।

प्रश्नकर्ता : ऐसे प्रेम को क्या कहा जााता है? अनन्य प्रेम कहलाता है?

दादाश्री : इसे प्रेम कहा जाता है संसार में। यह आसक्ति में नहीं आता और उसका फल भी बहुत ऊँचा मिलता है। पर वैसा खुद अपने को होम देना, वह होता नहीं न! यह तो खुद अपनी सेफसाइड रखकर काम किया करते हैं। और सेफसाइड न करे ऐसी स्त्रियाँ कितनी और ऐसे पुरुष कितने?

यह तो सिनेमा में जाते समय आसक्ति की तान में और तान में। और आते समय 'अक्कल बिना की है' कहेगा। तब वो कहेगी, 'आपमें कहाँ होशियारी है?' ऐसे बाते करते-करते घर आते हैं। वह होशियारी देख रही होती है!

प्रश्नकर्ता : यह तो ऐसा इन सभी का अनुभव है। कोई बोलता नहीं, पर हर एक व्यक्ति जानता है कि 'दादा' कहते हैं, वह बात सच्ची है।

प्रेम से ही जीता जाए

प्रश्नकर्ता : संसार में रहने के बाद कितनी ही जिम्मेदारियाँ पूरी करनी पड़ती है और जिम्मेदारियाँ अदा करनी, वह एक धर्म है। उस

धर्म का पालन करते हुए, कारण या अकारण कटुवचन बोलने पड़ते हैं, तो वह पाप या दोष माना जाता है? ये संसारी धर्मों का पालन करते समय कड़वे वचन बोलने पड़ते हैं, तो वह पाप या दोष है?

दादाश्री : ऐसा है न, कड़वा वचन बोलें, उस समय हमारा मुँह कैसा हो जाता है? गुलाब के फूल जैसा, नहीं? अपना मुँह बिगड़े तो समझना कि पाप लगा। अपना मुँह बिगड़े ऐसी वाणी निकली, वहीं समझना कि पाप लगा। कड़वे वचन नहीं बोलते। धीरे से, आहिस्ता से बोलो। थोड़े वाक्य बोलो, पर आहिस्ता रहकर, समझकर कहो, प्रेम रखो, एक दिन जीत सकोगे। कड़वे से जीत नहीं सकोगे। पर वह सामने विरोध करेगा और उल्टे परिणाम बांधेगा। वह बेटा उल्टा परिणाम बांधेगा। 'अभी तो छोटी उम्र का हूँ, इसलिए मुझे इतना झिड़कते हैं। बड़ी उम्र का हो जाऊँगा तब वापिस दूँगा।' ऐसे परिणाम अंदर बांधता है। इसलिए ऐसा मत करो। उसे समझाओ। एक दिन प्रेम जीतेगा। दो दिन में ही उसका फल नहीं आएगा। दस दिन, पंद्रह दिन, महीने तक प्रेम रखा करो। देखो, उस प्रेम का क्या फल आता है, वह तो देखो! आपको पसंद आई यह बात? कड़वा वचन बोले तो अपना मुँह नहीं बिगड़ जाता?

प्रश्नकर्ता : हम अनेक बार समझाएँ, फिर भी वह न समझे तो क्या करें?

दादाश्री : समझाने की ज़रूरत ही नहीं है। प्रेम रखो। फिर भी हम उस समझाएँ धीरे से। अपने पड़ोसी को भी ऐसा कड़वा वचन बोलते हैं हम?

प्रश्नकर्ता : पर वैसा धीरज होना चाहिए न?

दादाश्री : अभी पहाड़ी पर से पत्थर गिरे और वह आपके सिर पर पड़े तो आप ऊपर देख लेते हो और फिर किस पर क्रोध करते हो? उस घड़ी शांत रहते हो न? कोई दिखता नहीं इसलिए हम समझते हैं कि यह किसीने नहीं डाला। यानी अपने आप गिरा है।

इसलिए उसका हम गुनाह नहीं मानते। तब वह भी अपने आप ही गिरता है। वह तो डालनेवाला तो व्यक्ति दिखता है इतना ही। बाकी अपने आप ही गिरता है। आपके ही हिसाब चुक रहे हैं सब। इस दुनिया में सब हिसाब चुक रहे हैं। नये हिसाब बंध रहे हैं और पुराने हिसाब चुक रहे हैं। समझ में आया न? इसलिए सीधा बोलना बेटे के साथ, अच्छी भाषा बोलना।

प्रेम से पालना-पोसना पौधे को

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में कोई गलत कर रहा हो तो उसे टोकना पड़ता है, तो उससे उसे दुख होता है। तो वह किस तरह उसका निकाल करें?

दादाश्री : टोकने में हर्ज नहीं है, पर हमें आना चाहिए न! कहना आना चाहिए न, क्या?

प्रश्नकर्ता : किस तरह?

दादाश्री : बच्चे से कहें, 'तुझमें अक्कल नहीं, गधा है।' ऐसा बोलें तो फिर क्या होगा, वहाँ। उसे भी अहंकार होता है या नहीं? आपको ही आपका बोस कहे कि 'आपमें अक्कल नहीं, गधे हो।' ऐसा कहे तो क्या हो? नहीं कहते ऐसा। टोकना आना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : किस तरह टोकना चाहिए?

दादाश्री : उसे बैठाओ। फिर कहो, हम हिन्दुस्तान के लोग, आर्य प्रजा अपनी, हम कोई अनाड़ी नहीं और अपने से ऐसा नहीं होना चााहिए। ऐसा-वैसा सब समझाएँ और प्रेम से कहें तब रास्ते पर आएगा। नहीं तो आप तो मार, लेफ्ट एन्ड राइट, लेफ्ट एन्ड राइट ले लो तो चलता होगा?

परिणाम प्रेम से किए बिना आता नहीं। एक पौधा भी पालना-पोसकर बड़ा करना हो तो भी प्रेम से करते हो, तो बहुत अच्छा उगता है। पर वैसे ही पानी डालो न, और चीखो-चिल्लाओ तो कुछ नहीं होता।

एक पौधा बड़ा करना हो तो! आप कहते हो कि ओहोहो, बहुत अच्छा हुआ पौधा। तो उसे अच्छा लगता है! वह भी अच्छे फूल देता है बड़े-बड़े!! तो फिर ये मनुष्य को तो कितना अधिक असर होता होगा?

कहने कहने का तरीका

प्रश्नकर्ता : पर मुझे क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अपना बोला हुआ नहीं फलता हो तो हमें चुप हो जाना चाहिए। हम मूरख हैं, हमें बोलना नहीं आता, इसलिए बंद हो जाना चाहिए। अपना बोला हुआ फलता नहीं और उल्टा अपना मन बिगड़ता है, अपना अवतार बिगड़ता है। ऐसा कौन करे फिर?

इसलिए एक व्यक्ति सुधारा जा सके, ऐसा यह काल नहीं है। वही बिगड़ा हुआ है, सामनेवाले को क्या सुधारेगा फिर? वही वीकनेस का पुतला हो, वह सामनेवाले को क्या सुधारेगा फिर?! उसके लिए तो बलवानपन चाहिए। इसलिए प्रेम की ही ज़रूरत है।

प्रेम का पावर

सामनेवाले का अहंकार खड़ा ही नहीं होता। सत्तावाली आवाज़ हमारी नहीं होती। इसलिए सत्ता नहीं होनी चाहिए। बेटे को आप कहो न, तो सत्तावाली आवाज़ नहीं होनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हाँ, आपने कहा था कि कोई अपने लिए दरवाज़े बंद कर दे, उससे पहले ही हमें रुक जाना चाहिए।

दादाश्री : हाँ, सही बात है। वे दरवाज़े बंद कर दे, उससे पहले हमें रुक जाना चाहिए। तो उसे बंद कर देने पड़े, तब तक अपनी मूर्खता कहलाती है, क्या? ऐसा नहीं होना चाहिए, और सत्तावाली आवाज़ तो कभी भी मेरी निकली ही नहीं। इसलिए सत्तावाली आवाज़ नहीं होनी चाहिए। छोटा हो तब तक सत्तावाली आवाज़ दिखानी पड़ती है। चुप बैठ जा। तब भी मैं तो प्रेम ही दिखलाता हूँ। मैं तो प्रेम से ही बस करना चाहता हूँ।

प्रश्नकर्ता : प्रेम में जितना पावर है, उतना सत्ता में नहीं न?!

दादाश्री : ना। पर आपको प्रेम उत्पन्न होता नहीं न? जब तक वह कचरा निकल न जाए! कचरा सब निकालती है या नहीं निकालती? कैसे अच्छे हार्टवाले! जो हार्टिली होते हैं न उनके साथ दख़ल नहीं करना। तुझे उसके साथ अच्छी तरह रहना चाहिए। बुद्धिवाले के साथ दख़ल करना, करना हो तो।

पौधा बोया हो तो, आपको उसे डाँटते नहीं रहना चाहिए कि देख तू टेढ़ा मत होना, फूल बड़े लाना। हमें उसे खाद और पानी देते रहना है। यदि गुलाब का पौधा इतना सब काम करता है, ये बच्चे तो मनुष्य हैं और माँ-बाप पीटते भी हैं, मारते भी है।

हमेशा प्रेम से ही सुधरती है दुनिया। उसके अलावा दूसरा कोई उपाय ही नहीं है उसके लिए। यदि धाक से सुधरता हो न, तो यह गवर्नमेन्ट डेमोक्रेसी... सरकार लोकतंत्र उड़ा दे और जो कोई गुनाह करे, उसे जेल में डाल दे और फांसी कर दे। प्रेम से ही सुधरता है जगत्।

प्रश्नकर्ता : कईबार सामनेवाला व्यक्ति, हम प्रेम करते हैं फिर भी समझ नहीं सकता।

दादाश्री : फिर हमें क्या करना चाहिए वहाँ? सींग मारें?

प्रश्नकर्ता : पता नहीं, क्या करें फिर?

दादाश्री : ना, सींग मारते हैं फिर। फिर हम भी सींग मारें तब वह भी सींग मारता है, फिर शुरू लड़ाई। जीवन क्लेशित हो जाता है फिर।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसे संयोग में हमें किस तरह समता रखनी चाहिए? ऐसा तो हमें हो जाता है तो वहाँ पर किस तरह रहना चाहिए? समझ में नहीं आता कि तब क्या करें?

दादाश्री : क्या हो जाए तो?

प्रश्नकर्ता : हम प्रेम रखें और सामनेवाला व्यक्ति नहीं समझे, अपना प्रेम समझे नहीं, तो हमें क्या करना फिर?

दादाश्री : क्या करना है? शांत रहना है हमें। शांत रहना, दूसरा क्या करें हम उसे? क्या मारें उसे?

प्रश्नकर्ता : पर हम उस कक्षा में नहीं पहुँचे कि शांत रह सके।

दादाश्री : तो फिर कूदें हम उस घड़ी! दूसरा क्या करना? पुलिसवाला फटकारे तब क्यों शांत रहते हो?

प्रश्नकर्ता : पुलिसवाले की ऑथोरिटी है, उसकी सत्ता है।

दादाश्री : तो हमें उसे ऑथोराइज़ (अधिकृत) कर देना चाहिए। पुलिसवाले के सामने सीधे रहते हैं और यहाँ पर सीधा नहीं रह सकते!

बालक हैं, प्रेम भूखे

आज के बच्चों को बाहर जाना अच्छा नहीं लगे ऐसा कर डालो, कि घर में अपना प्रेम, प्रेम और प्रेम ही दिखे। फिर अपने संस्कार चलें।

हमें यदि सुधारना हो तो सब्ज़ी सुधारनी (साफ करनी, काटनी) पर बच्चों को नहीं सुधारना है! इन लोगों को सब्ज़ी सुधारनी आती है। सब्ज़ी सुधारनी नहीं आती?

प्रेम, ऐसा बरसाओ

और आप उसे एक चपत मारो तो वह रोने लगेगा, उसका क्या कारण है? उसे लगा इसलिए! ना, उसे लगने का दुख नहीं है। उसका अपमान किया, उसका उसे दुख है।

प्रेम से ही वश हो जाते हैं

इस जगत् को सुधारने का रास्ता ही प्रेम है। जगत् जिसे प्रेम कहता है वह प्रेम नहीं है, वह तो आसक्ति है। इस बेबी पर प्रेम करो, पर वह प्याला फोड़े तो प्रेम रहेगा? तब तो चिढ़ते हो। इसलिए वह आसक्ति है।

प्रेम से ही सुधरे जगत्

और प्रेम से ही सुधरते हैं। यह सब सुधारना हो न, तो प्रेम से सुधरता है। इन सबको मैं सुधारता हूँ न, वह प्रेम से सुधारता हूँ। यह हम प्रेम से ही कहते हैं न! प्रेम से कहते हैं, इसलिए बात बिगड़ती नहीं और सहज द्वेष से कहें कि वह बात बिगड़ जाती है। दूध में दही पड़ा न हो और वैसे ही ज़रा हवा लग गई, तब भी उस दूध का दही बन जाता है।

इसलिए प्रेम से सबकुछ बोल सकते हैं। जो प्रेमवाला मनुष्य है न, वह सबकुछ बोल सकता है। यानी हम क्या कहना चाहते हैं? प्रेमस्वरूप हो जाओ तो यह जगत् आपका ही है। जहाँ बैर हो, वहाँ बैर में से धीरे-धीरे प्रेमस्वरूप कर डालो। बैर से यह जगत् इतना अधिक रफ दिखता है। देखो न यहाँ प्रेमस्वरूप, किसीको ज़रा भी बुरा लगता नहीं और कैसा आनंद सभी करते हैं!

कदर माँगे वहाँ प्रेम कैसा?

बाकी, प्रेम देखने को नहीं मिलेगा इस काल में। जिसे सच्चा प्रेम कहा जाता है न, वह देखने को ही नहीं मिलेगा। अरे एक व्यक्ति मुझे कहता है, 'इतना अधिक मेरा प्रेम है, तब भी ये तिरस्कार करते हैं।' मैंने कहा, 'नहीं है यह प्रेम। प्रेम का तिरस्कार कोई करता ही नहीं।'

प्रश्नकर्ता : आप जिस प्रेम की बात करते हैं, उसमें प्रेम की अपेक्षाएँ होती हैं क्या?

दादाश्री : अपेक्षा? प्रेम में अपेक्षा नहीं होती। दारू पीता हो उस पर भी प्रेम हो और दारू नहीं पीता हो उस पर भी प्रेम होता है। प्रेम में अपेक्षा नहीं होती। प्रेम सापेक्ष नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : पर हर एक मनुष्य को, मेरे लिए दो शब्द अच्छे बोलें, ऐसी कदर की हमेशा इच्छा होती है। किसी को गाली सहन करना अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : उसकी कदर करे ऐसी आशा रखे तब वह प्रेम ही नहीं है। वह सब आसक्ति है। वह सब मोह ही है।

लोग प्रेम की आशा रखते हैं वे मूर्ख हैं सारे, फूलिश हैं। आपका पुण्य होगा तो प्रेम से कोई बुलाएगा। उस पुण्य से प्रेम है और आपके पाप का उदय हुआ तब आपका भाई ही कहेगा 'नालायक है तू, ऐसा है और वैसा है', चाहे जितने उपकार करो तब भी। यह पुण्य और पाप का प्रदर्शन है और हम समझते हैं कि वे ही ऐसा करते हैं।

यानी यह तो पुण्य बोल रहा है, इसलिए प्रेम तो होता ही नहीं। 'ज्ञानी पुरुष' के पास जाएँ, तब प्रेम जैसी वस्तु दिखती है। बाकी, प्रेम तो जगत् में किसी जगह पर नहीं होता।

अंदर की सिलक सँभालो

यह तो लोग बाहर कुछ तकरार हुई कि दोस्ती छोड़ देते हैं। पहले दोस्ती होती है और बहुत प्रेम से रहते हैं तो बाहर भी प्रेम और अंदर भी प्रेम! और फिर जब तकरार हों तब बाहर भी तकरार और अंदर भी तकरार। अंदर तकरार नहीं करनी है। वह समझता नहीं पर अंदर प्रेम रहने देना चाहिए। अंदर सिलक होगी न, तब तक मनुष्यपना नहीं जाएगा। अंदर की सिलक गई यानी मनुष्यपन भी चला जाएगा।

प्रेम में संकुचितता नहीं होती

मुझमें प्रेम होगा या नहीं होगा? या आप अकेले ही प्रेमवाले हो? यह आपने अपना प्रेम संकुचित किया हुआ है कि 'यह वाइफ और ये बच्चे।' जब कि मेरा प्रेम विस्तारपूर्वक है।

प्रश्नकर्ता : प्रेम इतना संकुचित हो सकता है कि एक ही पात्र के प्रति सीमित रहे?

दादाश्री : संकुचित हो ही नहीं, उसका नाम प्रेम। संकुचित हो न, कि इतने एरिया जितना ही, तब तो आसक्ति कहलाता है।

और वह संकुचित कैसा? चार भाई हों, और चारों के तीन-तीन बच्चे हों और इकट्ठे रहते हों, तो तब तक सभी घर में हमारा-हमारा बोलते हैं। 'हमारे प्याले फूट गए' सब ऐसा बोलते हैं। पर चारों जब अलग हो जाएँ तब उसके दूसरे दिन, आज बुधवार के दिन अलग हुए तो गुरुवार के दिन वे अलग ही बोलते हैं, 'यह आपका और यह हमारा।' ऐसे संकुचितता आती जाती है। इसलिए पूरे घर में प्रेम जो फैला हुआ था, वह अब ये अलग हुए इसलिए संकुचित हो गया। फिर पूरे मोहल्ले की तरह, युवक मंडल की तरह करना हो तो वापिस उनका प्रेम एक हो जाता है। बाकी प्रेम, वहाँ संकुचितता नहीं होती, विशालता होती है।

राग और प्रेम

प्रश्नकर्ता : तो प्रेम और राग ये दोनों शब्द समझाइए।

दादाश्री : राग, वह पौद्गलिक वस्तु है और प्रेम, वह सच्ची वस्तु है। अब प्रेम कैसा होना चाहिए? कि बढ़े नहीं, घटे नहीं, उसका नाम प्रेम कहलाता है। और बढ़े-घटे वह राग कहलाता है। इसलिए राग में और प्रेम में फर्क ऐसा है कि वह एकदम बढ़ जाए तो उसे राग कहते हैं, इसलिए फँसा फिर। यदि प्रेम बढ़ जाए तो राग में परिणमित होता है। प्रेम उतर जाए तो द्वेष में परिणमित होता है। इसलिए उसका नाम प्रेम कहलाता ही नहीं न! वह तो आकर्षण और विकर्षण है। इसलिए अपने लोग जिसे प्रेम कहते हैं, उसे भगवान आकर्षण कहते हैं।

राग कॉज़ेज़, अनुराग इफेक्ट

प्रश्नकर्ता : पर दादा, राग होता है, उसमें से अनुराग होता है और फिर उसमें से आसक्ति होती है।

दादाश्री : ऐसा है, राग, वे कॉज़ेज़ है और अनुराग और आसक्ति वह इफेक्ट है। वह इफेक्ट बंद नहीं करने है, कॉज़ेज़ बंद करने हैं। क्योंकि यह आसक्ति कैसी है? एक बहन कहती है, 'आपने

मुझे ज्ञान दिया और मेरे पुत्र को भी ज्ञान दिया है। फिर भी मुझे उस पर इतना अधिक राग है कि ये ज्ञान दिया, फिर भी राग जाता नहीं।' तब मैंने कहा, 'वह राग नहीं है, बहन। वह आसक्ति है।' तब वह कहती है, ''पर वैसी आसक्ति नहीं रहनी चाहिए न? आसक्ति 'आपको', 'शुद्धात्मा' को नहीं है।''

दृष्टिफेर से आसक्ति

प्रश्नकर्ता : मनुष्य को जगत् के प्रति किसलिए आसक्ति होती है?

दादाश्री : पूरा जगत् आसक्ति में ही है। जब तक सेल्फ में रहने की शक्ति उत्पन्न नहीं हो, सेल्फ की रमणता उत्पन्न नहीं हो, तब तक आसक्ति में ही सारे पड़े हुए हैं। साधु-सन्यासी-आचार्य, सभी आसक्ति में ही पड़े हुए हैं। इस संसार की, बीवी-बच्चों की आसक्ति छूटे तो पुस्तक की आसक्ति लग जाती है, नहीं तो 'हम' 'हम' की आसक्ति! वे सभी आसक्तियाँ ही हैं, जहाँ जाए वहाँ।

आसक्ति मतलब विकृत प्रेम

जो प्रेम कम-ज़्यादा हो, वह आसक्ति कहलाता है। हमारा प्रेम बढ़ता-घटता नहीं है। आपका बढ़ता-घटता है, इसलिए वह आसक्ति कहलाता है। कदाचित ऋणानुबंधी के सामने प्रेम कम-ज़्यादा हो तो 'हम' उसे 'जानें'। अब प्रेम कम-ज़्यादा नहीं होना चाहिए। नहीं तो प्रेम एकदम बढ़ गया तो भी आसक्ति कहलाता है और कम हो गया तो भी आसक्ति कहलाता है। और आसक्ति में हमेशा राग-द्वेष हुआ करते हैं। जो आसक्ति है उसे ही प्रेम मानते हैं, वह लोकभाषा है न! वापिस दूसरे भी ऐसा ही कहते हैं, उसे ही प्रेम कहते हैं। पूरी लोकभाषा ही ऐसी हो गई है!

प्रश्नकर्ता : इसमें प्रेम और आसक्ति का भेद ज़रा समझाइए न!

दादाश्री : जो विकृत प्रेम है उसका नाम ही आसक्ति। यह

जगत् यानी विकृत है, उसमें जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह विकृत प्रेम कहलाता है, और उसे आसक्ति ही कहा जाता है।

यानी आसक्ति में ही जगत् पूरा पड़ा हुआ है। अरे अंदर बैठे हैं न, वे अनासक्त है और वे सब अकामी हैं वापिस, और ये सब कामनावाले। आसक्ति है, वहाँ कामना है। लोग कहते हैं कि 'मैं निष्काम हो गया हूँ' परन्तु आसक्ति में रहते हैं वे निष्काम नहीं कहलाते। आसक्ति के साथ कामना होती ही है। कई लोग कहते हैं न, कि 'मैं निष्काम भक्ति करता हूँ।' मैंने कहा, 'करना न, तू और तेरी पत्नी दोनों करना(!) पर आसक्ति गई नहीं है, तब तक तू किस तरह यह निष्काम भक्ति करेगा?!'

आसक्ति तो इतना तक चिपकती है, कि अच्छे कप-प्लेट हो न तो उसमें भी चिपक जाती है। अरे, यहाँ क्या जीवित है?! एक व्यापारी के यहाँ मैं गया था, वह दिन में पाँच बार लकड़ा देख आता, तब उसे संतोष होता। अहा! ऐसा यह सुंदर रेशम जैसा गोल!! और ऐसे हाथ से सहलाता रहता, तब तो उसे संतोष होता था। तो इस लकड़े के ऊपर कितनी आसक्ति है! मात्र स्त्री के प्रति ही आसक्ति हो, ऐसा कुछ नहीं है। विकृत प्रेम जहाँ चिपका वहाँ आसक्ति!

आसक्ति से मुक्ति का मार्ग...

प्रश्नकर्ता : आसक्ति का सूक्ष्म स्वरूप आपने समझाया। अब उस आसक्ति से मुक्ति कैसे मिले?

दादाश्री : 'मैं अनासक्त हूँ', ऐसा 'उसे' भान हो तो मुक्ति मिल जाए। आसक्ति नहीं निकालनी है, 'अनासक्त हूँ' वह भान करना है। बाकी, आसक्ति जाती नहीं है। अब आप जलेबी खाने के बाद चाय पीओ तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : चाय फीकी लगेगी।

दादाश्री : हाँ, उसी तरह 'खुद का स्वरूप' प्राप्त होने के बाद

यह संसार फीका लगता है, आसक्ति उड़ जाती है। खुद का स्वरूप प्राप्त हो जाने के बाद जो उसे सँभालकर रखें, हम कहें उस अनुसार आज्ञापूर्वक रहे तो उसे यह संसार फीका लगेगा।

आसक्ति निकालने से जाती नहीं। क्योंकि इस लोहचुंबक और आलपिन दोनों को आसक्ति जो है, वह जाती नहीं। उसी प्रकार ये मनुष्यों की आसक्ति जाती नहीं। कम होती है, परिमाण कम होता है पर जाता नहीं। आसक्ति जाए कब? 'खुद' अनासक्त हो तब। 'खुद' आसक्त ही हुआ है। नामधारी मतलब आसक्त! नाम पर आसक्ति, सभी पर आसक्ति! पति हुआ मतलब आसक्त, बाप हुआ मतलब आसक्त!!

प्रश्नकर्ता : तो संयोगों का असर न हो वह सच्ची अनासक्ति है?

दादाश्री : ना, अहंकार खतम होने के बाद अनासक्त होता है मतलब अहंकार और ममता दोनों जाएँ, तब अनासक्ति! वो ऐसा कोई होता नहीं।

प्रश्नकर्ता : यानी यह सब करें, पर उसमें आसक्ति नहीं होनी चाहिए, कर्म लेपायमान नहीं होने चाहिए...

दादाश्री : पर आसक्ति लोगों को रहती ही है, स्वाभाविक रूप से। क्योंकि उसकी खुद की मूल भूल नहीं गई। रूटकॉज़ जाना चाहिए। रूटकॉज़ क्या है? तो यह उसे 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसी बिलीफ़ बैठ गई है। इसलिए चंदूभाई के लिए कोई कहे कि 'चंदूभाई को ऐसा किया जा रहा है, ऐसा नुकसान किया है' ऐसा-वैसा चंदूभाई पर आरोप लगाया जाए तो 'वे' गुस्से हो जाते हैं, 'उसको' खुद की वीकनेस खड़ी हो जाती है।

तो यह रूटकॉज़ है, भूल बड़ी यह है। दूसरी सभी भूल हैं ही नहीं। भूल मूल में यही है कि 'आप' जो हो वह जानते नहीं और नहीं वैसा आरोप करते हो। लोगों ने नाम दिया, वह तो पहचानने का साधन है कि, 'भाई, ये चंदूभाई और इन्कमटैक्स ऑफिसर।' वह सब

पहचानने का साधन है। ये इस स्त्री के पति वह भी पहचानने का साधन है। पर 'खुद असल में कौन है?' वह जानते नहीं, उसकी ही यह सब मुश्किल है न?

प्रश्नकर्ता : अंतिम मुश्किल तो वहीं पर है न?

दादाश्री : यानी यह रूटकॉज़ है। उस रूटकॉज़ को तोड़ा जाए तो काम हो जाए।

यह अच्छा-बुरा वह बुद्धि के अधीन है। अब बुद्धि का धंधा क्या है? जहाँ जाए वहाँ प्रोफिट और लोस देखती है। बुद्धि ज़्यादा काम नहीं कर सकती, प्रोफिट और लोस के अलावा। अब उससे दूर हो जाओ। अनासक्त योग रखो। आत्मा का स्वभाव कैसा है? अनासक्त स्वरूप है। खुद का स्वभाव ऐसा है। तू भी स्वभाव से अनासक्त हो जा। अब जैसा स्वभाव आत्मा का है, वैसा स्वभाव हम करें, तब एकाकार हो जाएँ, फिर वह कुछ अलग है ही नहीं। स्वभाव ही बदलना है।

अब हम आसक्ति रखें और भगवान जैसे हो जाएँ, वह किस तरह होगा? वह अनासक्त और आसक्ति के बीच मेल किस तरह हो? अपने में क्रोध हो और फिर भगवान से मिलाप किस तरह हो?

भगवान में जो धातु है, वह धातुरूप तू हो जा। जो सनातन है, वही मोक्ष है। सनातन मतलब निरंतर। निरंतर रहता है, वही मोक्ष है।

करने गया क्या और हो गया क्या?!!

प्रश्नकर्ता : दादा, आप किस तरह अनासक्त हुए?

दादाश्री : सब अपने आप, बट नैचरल प्रकट हो गया। यह मुझे कुछ पता नहीं पड़ता कि किस तरह हुआ यह!

प्रश्नकर्ता : पर अब तो आपको पता चलता है न? वे सोपान हमें कहिए न।

दादाश्री : मैं कुछ करने गया नहीं था, कुछ हुआ नहीं। मैं

करने गया क्या और हो गया क्या?! मैं तो इतनी सी खीर बनाने गया था, दूध में चावल डालकर पर यह तो अमृत बन गया!! वह पूर्व का सामान सारा इकट्ठा हो गया था। मुझे ऐसा ज़रूर था कि अंदर अपने पास कुछ है, इतना ज़रूर मालूम था। उसकी ज़रा घेमराजी (खुद के सामने दूसरों को तुच्छ समझना) रहा करती थी।

प्रश्नकर्ता : यानी अनासक्त आप जिस तरीके से हुए तो मुझे ऐसा हुआ कि उस तरीके का वर्णन करोगे, तो उस तरीके का मुझे समझ में आएगा।

दादाश्री : ऐसा है, यह 'ज्ञान' लिया और हमारी आज्ञा में रहे, वे अनासक्त कहलाते हैं। फिर भले ही वह खाता-पीता हो या काला कोट पहनता हो या सफेद कोट-पेन्ट पहनता हो या चाहे जो पहनता हो। पर वह हमारी आज्ञा में रहा तो वह अनासक्त कहलाएगा। यह आज्ञा अनासक्त का ही प्रोटेक्शन है।

आसक्ति, परमाणुओं का साइन्स

यह किसके जैसा है? यह लोहचुंबक होता है और यह आलपिन यहाँ पड़ी हो और लोहचुंबक ऐसे-ऐसे करें तो आलपिन ऊँचीनीची होती है या नहीं होती? होती है। लोहचुंबक पास में रखें तो आलपिन उसे चिपक जाती है। उस आलपिन में आसक्ति कहाँ से आई? उसी प्रकार इस शरीर में लोहचुंबक नाम का गुण है। क्योंकि अंदर इलेक्ट्रिकल बॉडी है, इसलिए उस बॉडी के आधार पर सारी इलेक्ट्रिसिटी हुई है। उससे शरीर में लोहचुंबक नाम का गुण उत्पन्न होता है, तब जहाँ खुद के परमाणु मिलते आएँ, वहाँ आकर्षण खड़ा होता है और दूसरों के साथ कुछ भी नहीं। उस आकर्षण को अपने लोग राग-द्वेष कहते हैं। कहेंगे, 'मेरी देह खिंचती है।' अरे, तेरी इच्छा नहीं तो देह क्यों खिंचती है? इसलिए तू कौन है वहाँ पर?!

हम देह से कहें, 'तू जाना मत', तब भी उठकर चलने लगता है। क्योंकि परमाणु का बना हुआ है न, परमाणु का खिंचाव है यह।

मेल खाते परमाणु आएँ वहाँ यह देह खिंच जाती है। नहीं तो अपनी इच्छा न हो तब भी यह देह कैसे खिंच जाए। यह देह खिंच जाती है, उसे इस जगत् के लोग कहते हैं, 'मुझे इस पर बहुत राग है।' हम पूछें, 'अरे, तेरी इच्छा खिंचने की है?' तो वे कहेंगे, 'ना, मेरी इच्छा नहीं है, तब भी खिंच जाता है।' तो फिर यह राग नहीं है। यह तो आकर्षण का गुण है। पर ज्ञान न हो तब तक आकर्षण कहलाता नहीं है, क्योंकि उसके मन में तो ऐसा ही मानता है कि 'मैंने ही यह किया।' और यह 'ज्ञान' हो तो खुद सिर्फ जानता है कि देह आकर्षण से खिंची और मैंने कुछ किया नहीं। इसलिए यह देह खिंचती है न, वह देह क्रियाशील बनती है। यह सब परमाणु का ही आकर्षण है।

ये मन-वचन-काया आसक्त स्वभाव के हैं। आत्मा आसक्त स्वभाव का नहीं है। और यह देह आसक्त होता है, वह लोहचुंबक और आलपीन जैसा है। क्योंकि वह चाहे जैसा लोहचुंबक हो तब भी वह तांबे को नहीं खींचेगा। किसे खींचेगा वह? हाँ, सिर्फ लोहे को ही खींचेगा। पीतल हो तो नहीं खींचेगा। यानी स्वजातीय को ही खींचेगा। वैसे ही इसमें जो परमाणु है न अपनी बोडी में, वे लोहचुंबकवाले हैं। वे स्वजातीय को ही खींचते हैं। समान स्वभाववाले परमाणु खिंचते हैं। पागल पत्नी के साथ बनती है और समझदार बहन उसे बुलाती हो तब भी उसके साथ नहीं बनती। क्योंकि परमाणु नहीं मिलते हैं।

इसीलिए इस बेटे पर आसक्ति ही है खाली। परमाणु-परमाणु मेल खाते हैं। तीन परमाणु अपने और तीन परमाणु उसके, ऐसे परमाणु मेल खाएँ तब आसक्ति होती है। मेरे तीन और आपके चार हो तो कुछ भी लेना देना नहीं। यानी विज्ञान है यह सब तो।

यह आसक्ति, वह देह का गुण है, परमाणुओं का गुण है। वह कैसा है? लोहचुंबक और आलपिन में जैसा संबंध है वैसा, देह से मेल खाएँ हों, वैसे परमाणुओं में ही देह खिंचता है, वह आसक्ति है।

आसक्ति तो अबॉव नॉर्मल और बिलो नॉर्मल भी हो सकती

है। प्रेम नॉर्मेलिटी में होता है, एक सरीखा ही होता है, उसमें किसी भी प्रकार का बदलाव होता ही नहीं। आसक्ति तो जड़ की आसक्ति है, चेतन की तो नाम मात्र की भी नहीं है।

व्यवहार में अभेदता रहे, उसका भी कारण होता है। वह तो परमाणु और आसक्ति के गुण हैं, पर उसमें कौन से क्षण क्या होगा वह कहा नहीं जा सकता। जब तक परमाणु मेल खाते हों तब तक आकर्षण रहता है, उसके कारण अभेदता रहती है। और परमाणु मेल न खाएँ तो विकर्षण होता है और बैर होता है। इसलिए आसक्ति हो, वहाँ बैर होता ही हैं। आसक्ति में हिताहित का भान नहीं होता। प्रेम में संपूर्ण हिताहित का भान होता है।

यह तो परमाणुओं का साइन्स है। उसमें आत्मा को कुछ भी लेना देना नहीं है। पर लोग तो भ्रांति से परमाणु के खिंचाव को मानते हैं कि, 'मैं खिंचा।' आत्मा खिंचता ही नहीं।

कहाँ भ्रांत मान्यता! कहाँ वास्तविकता!

यह तो सूई और लोहचुंबक के आकर्षण के कारण आपको ऐसा लगता है कि मुझे प्रेम है इसीलिए मैं खिंचता हूँ। पर वह प्रेम जैसी वस्तु ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो इन लोगों को ऐसा पता नहीं चलता कि अपना प्रेम है या नहीं?

दादाश्री : प्रेम तो सबको पता चलता है। डेढ़ वर्ष के बालक को भी पता चलता है, उसका नाम प्रेम कहलाता है। यह दूसरा सब तो आसक्ति है। चाहे जैसे संयोगों में भी प्रेम बढ़े नहीं और घटे नहीं, उसका नाम प्रेम कहलाता है। बाकी, इसे प्रेम कहा ही कैसे जाए? यह तो भ्रांति का है। भ्रांतभाषा का शब्द है।

आसक्ति में से उद्भव होता है बैर

इसलिए जगत् ने सभी देखा था पर प्रेम देखा नहीं था और

जगत् जिसे प्रेम कहता है वह तो आसक्ति है। आसक्ति में से ये बखेड़े खड़े होती हैं सारे।

और लोग समझते हैं कि प्रेम से यह जगत् खड़ा रहा है। पर प्रेम से यह जगत् खड़ा नहीं रहा है, बैर से खड़ा रहा है। प्रेम का फाउन्डेशन ही नहीं है। यह बैर के फाउन्डेशन पर खड़ा रहा है, फाउन्डेशन ही बैर के हैं। इसलिए बैर छोड़ो। इसलिए तो हम बैर का निकाल करने का कहते हैं न! समभावे निकाल करने का कारण ही यह है।

भगवान कहते हैं कि, द्वेष परिषह उपकारी है। प्रेम परिषह कभी भी नहीं छूटता। सारा जगत् प्रेम परिषह में ही फँसा हुआ है। इसलिए हर एक को दूर रहकर 'जयश्री कृष्ण' करके छूट जाना। किसीकी तरफ प्रेम रखना मत और किसीके प्रेम में फँसना नहीं। प्रेम का तिरस्कार करके भी मोक्ष में नहीं जाया जा सकता। इसलिए सावधान रहना। मोक्ष में जाना हो तो विरोधियों का तो उपकार मानना। प्रेम करते हैं वे ही बंधन में डालते हैं, जब कि विरोधी उपकारी-हेल्पिंग हो जाते हैं। जिसने अपने ऊपर प्रेम बरसाया है, उसका तिरस्कार न हो, वैसा करके छूट जाना। क्योंकि प्रेम के तिरस्कार से संसार खड़ा है।

'खुद' अनासक्त स्वभावी ही

बाकी, 'आप' अनासक्त हो ही। अनासक्ति कोई मैंने आपको दी नहीं है। अनासक्त 'आपका' स्वभाव ही है और आप ऐसा मानते हो, दादा का उपकार मानते हो कि दादा ने अनासक्ति दी है। ना, ना, मेरा उपकार मानने की ज़रूरत नहीं है और 'मैं उपकार करता हूँ' ऐसा मानूँगा तो मेरा प्रेम खतम होता जाएगा। मुझसे 'मैं उपकार करता हूँ' ऐसा माना नहीं जा सकता। इसलिए खुद, खुद की पूरी समझ में रहना पड़ता है, संपूर्ण जागृति में रहना पड़ता है।

यानी अनासक्त आपका खुद का स्वभाव है। आपको कैसा लगता है? मैंने दिया है या आपका खुद का स्वभाव ही है?

प्रश्नकर्ता : खुद का स्वभाव ही है न!

दादाश्री : हाँ, ऐसा बोलो न ज़रा। यह तो सभी 'दादा ने दिया, दादा ने दिया' कहो तो कब पार आएगा?!

प्रश्नकर्ता : पर उसका भान तो आपने करवाया न?

दादाश्री : हाँ, पर भान करवाया, उतना ही! बाकी 'सब मैंने दिया है' ऐसा कहते हो पर वह आपका है और आपको दिया है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, हमारा है वह आपने दिया है। पर हमारा था वैसा हम जानते कहाँ थे?!

दादाश्री : जानते नहीं थे पर जाना न आखिर तो! जाना उसका रौब तो अलग ही है न! उसका रौब कैसा पड़ता है? नहीं?! कोई गालियाँ दे तो भी उसका रौब नहीं जाए। हाँ रौब कैसा पड़ता है?! और उस रौबवाले को? 'ऐसे-ऐसे' न किया हो न, तो ठंडा पड़ जाता है! 'ऐसे ऐसे' करना रह गया तो रिसेप्शन में, तो ठंडा पड़ जाता है! 'सभी को किया और मैं रह गया।' देखो यह रौब और उस रौब में कितना फर्क?!

प्रश्नकर्ता : इसलिए जिसमें आसक्त पहले होते हैं, वहाँ पर ही फिर अनासक्त पर आएगा।

दादाश्री : हाँ, वह तो रास्ता ही है न! वह उसके स्टेपिंग ही हैं सारे। बाकी अंत में अनासक्त योग में आना है।

अभेद प्रेम वहाँ बुद्धि का अंत

भगवान कैसे हैं? अनासक्त! किसी जगह पर आसक्त नहीं।

प्रश्नकर्ता : और ज्ञानी भी अनासक्त ही हैं न?

दादाश्री : हाँ। इसलिए ही हमारा निरंतर प्रेम होता है न वह सब जगह एक सा, समान प्रेम होता है। गालियाँ दें उस पर भी समान, फूल चढ़ाएँ उस पर भी समान और फूल न चढ़ाएँ उस पर भी समान। हमारे प्रेम में भेद नहीं पड़ता और अभेद प्रेम है वहाँ तो बुद्धि चली जाती है

फिर। हमेशा प्रेम पहले, बुद्धि को तोड़ डालता है या फिर बुद्धि प्रेम को आसक्त बनाती है। इसलिए बुद्धि हो वहाँ प्रेम नहीं होता और प्रेम हो वहाँ बुद्धि नहीं होती। अभेद प्रेम उत्पन्न हो कि बुद्धि खत्म हुई यानी अहंकार खत्म हुआ। फिर कुछ रहा नहीं और ममता नहीं हो, तब ही प्रेमस्वरूप हो जाएगा। हम तो अखंड प्रेमवाले! हमें इस देह पर ममता नहीं है। इस वाणी पर ममता नहीं और मन पर भी ममता नहीं है।

वीतरागता में से प्रेम का उद्भव

इसलिए सच्चा प्रेम कहाँ से लाए? वह तो अहंकार और ममता गए बाद में ही प्रेम होता है। अहंकार और ममता गए बिना सच्चा प्रेम होता ही नहीं। सच्चा प्रेम यानी वीतरागता में से उत्पन्न होनेवाली वह वस्तु है। द्वंद्वातीत होने के बाद वीतराग होता है। द्वैत और अद्वैत तो द्वंद्व है। अद्वैतवाले को द्वैत के विकल्प आया करते हैं। 'वह द्वैत, वह द्वैत, वह द्वैत!' तब द्वैत आ पड़ता है उल्टे। पर वह अद्वैतपद अच्छा है। पर अद्वैत से तो एक लाख मील जाएगा तब वीतरागता का पद आएगा और वीतरागता का पद आने के बाद अंदर प्रेम उत्पन्न होगा और वह प्रेम उत्पन्न होए, वह परमात्म प्रेम है। दो धौल मारो तब भी वह प्रेम घटे नहीं और घटे तो हम समझे कि यह प्रेम नहीं था।

सामनेवाले का धक्का हमें लग जाए उसका हर्ज नहीं है। पर अपना धक्का सामनेवाले को नहीं लगे वह हमें देखना है। तो प्रेम संपादन होता है। बाकी, प्रेम संपादन करना हो तो वैसे ही नहीं होता। धीरे-धीरे सभी के साथ शुद्ध प्रेम स्वरूप होना है।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध प्रेम स्वरूप यानी किस तरह रहना चाहिए?

दादाश्री : कोई व्यक्ति अभी गालियाँ देता हुआ गया और फिर आपके पास आया तब भी आपका प्रेम घट नहीं जाता, उसका नाम शुद्ध प्रेम। ऐसा प्रेम का पाठ सीखना है, बस। दूसरा कुछ सीखना नहीं है। मैं जो दिखाऊँ वैसा प्रेम होना चाहिए। यह ज़िन्दगी पूरी होने तक में आ जाएगा न सब? वह प्रेम सीखो अब!

रीत, प्रेमस्वरूप होने की

असल में जगत् जैसा है वैसा वह जाने, फिर अनुभव करे तो उसे प्रेमस्वरूप ही होगा। जगत् 'जैसा है वैसा' क्या है? कि कोई जीव किंचित् मात्र दोषी नहीं, निर्दोष ही है जीव मात्र। कोई दोषी दिखता है वह भ्रांति से ही दिखता है।

अच्छे दिखते हैं, वह भी भ्रांति और दोषी दिखते हैं, वह भी भ्रांति। दोनों अटेचमेन्ट-डिटेचमेन्ट हैं। यानी कोई दोषी असल में है ही नहीं और दोषी दिखता है इसलिए प्रेम आता ही नहीं। इसलिए जगत् के साथ जब प्रेम होगा, जब निर्दोष दिखेगा, तब प्रेम उत्पन्न होगा। यह मेरा-तेरा, वह कब तक लगता है? कि जब तक दूसरे को अलग मानते हैं तब तक। उसके साथ भेद है तब तक, यह मेरा लगता है उससे। तो इस अटेचमेन्टवाले को मेरा मानते हैं और डिटेचमेन्टवाले को पराया मानते हैं, वह प्रेमस्वरूप किसी के साथ रहता नहीं।

इसलिए यह प्रेम वह परमात्मा गुण है, इसलिए हमें वहाँ पर खुद को वहाँ सारा ही दुख बिसर जाता है उस प्रेम से। मतलब प्रेम से बंधा यानी फिर दूसरा कुछ बंधने को रहा नहीं।

प्रेम कब उत्पन्न होता है? जो अभी तक भूलें हुई हों उनकी माफ़ी माँग लें, तब प्रेम उत्पन्न होता है।

उनका दोष एक भी नहीं हुआ, पर मुझे दिखा इसलिए मेरा दोष था।

जिसके साथ प्रेमस्वरूप होना हो न, वहाँ इस तरह करना। तब आपको प्रेम उत्पन्न होगा। करना है या नहीं करना प्रेम?

प्रश्नकर्ता : हाँ दादा।

दादाश्री : हमारा यही तरीका होता है सारा। हम जिस तरह तर गए हैं उसी तरीके से तारते हैं सभी को।

आप प्रेम उत्पन्न करोगे न?! प्रेमस्वरूप हो जाएँ तब सामनेवाले

को अभेदता रहती है। सब हमारे साथ उस तरह से अभेद हो गए हैं। यह रीति खुली कर डाली।

सर्व में मैं देखें वह प्रेममूर्ति

अब जितना भेद जाए, उतना शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है। शुद्ध प्रेम को उत्पन्न होने के लिए क्या जाना चाहिए अपने में से? कोई वस्तु निकल जाए तब वह वस्तु आएगी। यानी कि यह वेक्युम रह नहीं सकता। इसलिए इसमें से भेद जाए, तब शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है। इसलिए जितना भेद जाए उतना शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है। संपूर्ण भेद जाए तब संपूर्ण शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है। यही रीति है।

आपको समझ में आया 'पोइन्ट ऑफ व्यू'? यह अलग तरह का है और प्रेममूर्ति बन जाना है। सब एक ही लगे, जुदाई लगे ही नहीं। कहेंगे, 'यह हमारा और यह आपका।' पर यहाँ से जाते समय 'हमारा-आपका' होता है?! इसलिए इस रोग के कारण जुदाई लगती है। यह रोग निकल गया, तो प्रेममूर्ति हो जाता है।

प्रेम यानी यह सारा ही 'मैं' ही हूँ, 'मैं' ही दिखता हूँ। नहीं तो 'तू' कहना पड़ेगा। 'मैं' नहीं दिखेगा तो 'तू' दिखेगा। दोनों में से एक तो दिखेगा ही न? व्यवहार में बोलना ऐसे कि 'मैं, तू।' पर दिखना चाहिए तो 'मैं' ही न! वह प्रेमस्वरूप यानी क्या? कि सभी को अभेदभाव से देखना, अभेदभाव से वर्तन करना, अभेदभाव से चलना, अभेदभाव ही मानना। 'ये अलग हैं' ऐसी-वैसी मान्यताएँ सब निकाल देनी। उसका नाम ही प्रेमस्वरूप। एक ही परिवार हो ऐसा लगे।

ज्ञानी का अभेद प्रेम

जुदाई नहीं पड़े, उसका नाम प्रेम। भेद नहीं डालना, उसका नाम प्रेम। अभेदता हुई वही प्रेम। वह प्रेम नोर्मेलिटी कहलाती है। भेद हो तब अच्छा काम कर आए न, तो खुश हो जाता है। वापिस थोड़ी देर बाद उल्टा काम, चाय के प्याले गिर गए तो चिढ़ जाता है, यानी अबव नॉर्मल, बिलो नॉर्मल हुआ करता है। प्रेम, वह काम देखता नहीं

है। मूल स्वभाव के दर्शन करता है। काम तो, हमें नोर्मेलिटी में प्रोब्लम न हों, वैसे ही काम होते हैं।

प्रश्नकर्ता : हमें आपके प्रति जो भाव जागृत होता है वह क्या है?

दादाश्री : वह तो हमारा प्रेम आपको पकड़ता है। सच्चा प्रेम सब जगह सारे जगत् को पकड़ सकता है। प्रेम कहाँ कहाँ होता है? प्रेम वहाँ होता है कि जहाँ अभेदता होती है। यानी जगत् के साथ अभेदता कब कहलाती है? कि प्रेमस्वरूप हो जाए तो। सारे जगत् के साथ अभेदता कहलाती है। तब वहाँ पर दूसरा कुछ दिखता नहीं, प्रेम के अलावा।

आसक्ति कब कहलाती है? कि जब कोई संसारी चीज़ लेनी हो तब। संसारी चीज़ का हेतु होता है तब। यह सच्चा सुख के लिए तो फायदा होगा, उसका हर्ज नहीं। हमारे ऊपर जो प्रेम रहता है, उसका हर्ज नहीं। वह आपको हैल्प करेगा। दूसरी टेढ़ी जगहों पर होनेवाला प्रेम उठ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी हममें जागृत होनेवाला भाव, वह आपके हृदय के ही प्रेम का परिणाम है, वही?

दादाश्री : हाँ, प्रेम का ही परिणाम है। यानी प्रेम के हथियार से ही समझदार हो जाते हैं। मुझे डाँटना नहीं पड़ता।

मैं, लड़ना किसीसे नहीं चाहता, मेरे पास तो एक ही प्रेम का हथियार है, 'मैं प्रेम से जगत् को जीतना चाहता हूँ।'

क्योंकि हथियार मैंने नीचे रख दिए हैं। जगत् हथियार के कारण ही विरोधी होते हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ के वे हथियार मैंने नीचे रख दिए हैं इसलिए मैं वे काम में नहीं लेता। मैं प्रेम से जगत् को जितना चाहता हूँ। जगत् जो समझता है वह तो लौकिक प्रेम है। प्रेम तो उसका नाम कि आप मुझे गालियाँ दो तो मैं डिप्रेस न होऊँ और हार चढ़ाओ तो एलिवेट न हो जाऊँ, उसका नाम प्रेम कहलाता है।

सच्चे प्रेम में तो फर्क ही नहीं पड़ता। इस देह के भाव में फर्क पड़े, पर शुद्ध प्रेम में नहीं।

मनुष्य तो सुंदर हों तब भी अहंकार से बदसूरत दिखते हैं। सुंदर कब दिखते हैं? तब कहें, प्रेमात्मा हो जाए तब। तब तो बदसूरत भी सुंदर दिखता है। शुद्ध प्रेम प्रकट हो जाए तभी सुंदर दिखने लगता है। जगत् के लोगों को क्या चाहिए? मुक्त प्रेम। जिसमें स्वार्थ की गंध या किसी प्रकार का मतलब नहीं होता।

यह तो कुदरत का लॉ है। नैचुरल लॉ! क्योंकि प्रेम वह खुद परमात्मा है।

प्रेम वहीं मोक्षमार्ग

अर्थात् जहाँ प्रेम न दिखे, वहाँ मोक्ष का मार्ग ही नहीं। हमें नहीं आए, बोलना भी नहीं आए, तब भी वह प्रेम रखे, तब ही सच्चा।

यानी एक प्रमाणिकता और दूसरा प्रेम कि जो प्रेम कम-ज़्यादा नहीं होता। इन दो जगह पर भगवान रहते हैं। क्योंकि जहाँ प्रेम है, निष्ठा है, पवित्रता है, वहाँ पर ही भगवान है।

सारा रिलेटिव डिपार्टमेन्ट पार कर जाए तब निरालंब होता है, तब प्रेम उत्पन्न होता है। 'ज्ञान' कहाँ सच्चा होता है? जहाँ प्रेम से काम लिया जाता हो वहाँ और प्रेम हो वहाँ लेन-देन नहीं होता। प्रेम हो वहाँ एकता होती है। जहाँ फ़ीस होती है, वहाँ प्रेम नहीं होता। लोग फ़ीस रखते हैं न? पाँच-दस रुपये? कि 'आना, आपको सुनना हो तो, यहाँ नौ रुपये फ़ीस है' कहेंगे। यानी धंधा हो गया! वहाँ प्रेम नहीं होता। रुपये हों वहाँ प्रेम नहीं होता। दूसरा, जहाँ प्रेम वहाँ ट्रिक नहीं होती और जहाँ ट्रिक है वहाँ प्रेम नहीं होता।

जहाँ सो गए, वहीं का ही आग्रह हो जाता है। चटाई में सोता हो तो उसका आग्रह हो जाता है, और डनलप के गद्दे में सोता हो तो उसका आग्रह हो जाता है। चटाई पर सोने के आग्रहवाले को गद्दे

में सुलाएँ तो उसे नींद नहीं आती। आग्रह ही विष है और निराग्रहता ही अमृत है। निराग्रहीपन जब तक उत्पन्न नहीं होता तब तक जगत् का प्रेम संपादन नहीं होता। शुद्ध प्रेम निराग्रहता से उत्पन्न होता है और शुद्ध प्रेम वही परमेश्वर है।

इसलिए प्रेमस्वरूप कब हुआ जाएगा? नियम-वियम न ढूंढो, तब। यदि नियम ढूंढोगे तो प्रेमस्वरूप नहीं हुआ जाएगा! 'क्यों देर से आए?' कहें वह प्रेमस्वरूप नहीं कहलाता और प्रेमस्वरूप हो जाओगे तब लोग आपका सुनेंगे। हाँ, आप आसक्तिवाले हो तो आपका कौन सुने? आपको पैसे चाहिए, आपको दूसरी स्त्रियाँ चाहिए, वह आसक्ति कहलाएगी न?! शिष्य इकट्ठे करना वह भी आसक्ति कहलाएगी न?

प्रेम में इमोशनलपन नहीं

प्रश्नकर्ता : यह प्रेमस्वरूप जो है, वह भी कहलाता है कि हृदय में से आता है और इमोशनलपन भी हृदय में से ही आता है न?

दादाश्री : ना, वह प्रेम नहीं है। प्रेम तो शुद्ध प्रेम होना चाहिए। ये ट्रेन में सब लोग बैठे हैं और ट्रेन इमोशनल हो जाए तो क्या हो?

प्रश्नकर्ता : गड़बड़ हो जाए। एक्सिडेन्ट हो जाए।

दादाश्री : लोग मर जाएँ। इसी तरह ये मनुष्य इमोशनल होते हैं तब अंदर इतने सारे जीव मर जाते हैं और उसकी जिम्मेदारी खुद के सिर पर आती है। अनेक प्रकार की ऐसी जिम्मेदारियाँ आती हैं, इमोशनल हो जाने से।

प्रश्नकर्ता : बगैर इमोशन का मनुष्य पत्थर जैसा नहीं हो जाएगा?

दादाश्री : मैं इमोशन बिना का हूँ, तो पत्थर जैसा लगता हूँ? बिलकुल इमोशन नहीं है मुझमें। इमोशनवाला मिकेनिकल हो जाता है। पर मोशनवाला तो मिकेनिकल होता नहीं न!

प्रश्नकर्ता : पर यदि खुद का सेल्फ रियलाइज़ नहीं हुआ हो तो फिर ये इमोशन बगैर का मनुष्य पत्थर जैसा ही लगेगा न?

दादाश्री : वह होता ही नहीं है। ऐसा होता ही नहीं न! ऐसा कभी होता ही नहीं। नहीं तो फिर उसे मेन्टल में ले जाते हैं। पर वे मेन्टल भी सब इमोशनल ही होते हैं। पूरा जगत् ही इमोशनल है।

अश्रु से व्यक्त, वह नहीं सच्ची लागणी

प्रश्नकर्ता : संसार में रहने के लिए *लागणी* (भावुकतावाला प्रेम, लगाव) की ज़रूरत है। लागणी प्रदर्शित करनी ही पड़ती है। लागणी प्रदर्शित न करो तो मूढ़ कहते हैं। अब ज्ञान मिलता है, ज्ञान की समझ उतरती है, फिर लागणी उतनी प्रदर्शित नहीं होती। अब करनी चाहिए व्यवहार में?

दादाश्री : क्या होता है वह देखना है।

प्रश्नकर्ता : उदाहरण के तौर पर बेटा दूसरे शहर में पढ़ने गया। और एयरपोर्ट पर माँ और बाप दोनों गए, और माँ की आँख में से आँसू गिरे पर बाप रोया नहीं। इसलिए तू कठोर पत्थर जैसा है, कहते हैं।

दादाश्री : ना, नहीं होती लागणी ऐसी। दूसरे शहर जाता हो तो क्या? उसकी आँख में से आँसू गिरें तो उसे डाँटना चाहिए कि इस तरह से ढीली कब तक रहेगी मोक्ष में जाना है तो!

प्रश्नकर्ता : ना, यानी ऐसा कि यदि लागणी न हो तो उतना वह व्यक्ति कठोर हो जाता है। वैसा लागणी बिना का मनुष्य बहुत कठोर होता है।

दादाश्री : लागणी तो जिसे आँख में आँसू नहीं आते उसकी सच्ची है, और आपकी झूठी लागणी है। आपकी दिखावे की लागणी है और उनकी सच्ची लागणी है। सच्ची लागणी हार्टिली होती है। वह सब गलत और उल्टा मान बैठे हैं। लागणी कोई जबरदस्ती होती नहीं है। वह तो नैचुरल गिफ्ट है। ऐसे कहते हैं कि कठोर पत्थर जैसा है तो लागणी उत्पन्न होती हो तो भी बंद हो जाए। वह कोई रोना और फिर तुरन्त भूल जाना, वह लागणी कहलाती नहीं है। लागणी तो रोना भी नहीं और याद रहना, उसका नाम लागणी कहलाता है।

लागणीवाले तो हम भी हैं, कभी भी रोते नहीं, पर फिर भी सबके लिए लागणी कायम की है। क्योंकि जितने अधिक मिलें, उतने तो रोज़ हमारे ज्ञान में आते ही हैं सभी।

प्रश्नकर्ता : माँ-बाप खुद के बालकों के लिए जिस प्रकार लागणी व्यक्त करते हैं, तो बहुत बार लगता है कि खूब प्रदर्शित करते हैं।

दादाश्री : वह इमोशनल ही है सारा। कम बतानेवाला भी इमोशनल कहलाता है। नॉर्मल होना चाहिए। नॉर्मल यानी खाली ड्रामेटिक। ड्रामे की स्त्री के साथ ड्रामा करना, वह असल, एक्ज़ेक्ट। लोग ऐसा समझते हैं कि थोड़ी भी भूल नहीं की। पर बाहर निकलते समय उसे कहें, चल मेरे साथ, तो नहीं आती वह? वह तो ड्रामा तक ही था, कहती है। वह समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, समझ में आता है।

दादाश्री : इसलिए बच्चों से कहें, 'आ भाई, बैठ जा। तेरे अलावा मेरा दूसरा कौन है?' हम तो हीराबा से कहते थे कि मुझे आपके बिना अच्छा नहीं लगता। यह परदेश जाता हूँ पर आपके बिना मुझे अच्छा नहीं लगता।

प्रश्नकर्ता : बा को सच भी लगता था!

दादाश्री : हाँ, सच्चा ही होता। अंदर छूने नहीं देते थे।

प्रश्नकर्ता : पहले के जमाने में माँ-बाप को बच्चों के लिए प्रेम या उनकी संभाल, वह सब करने का टाइम ही नहीं होता था और कोई प्रेम देता भी नहीं था। बहुत ध्यान नहीं देते थे। अभी माँ-बाप बच्चों को बहुत प्रेम देते हैं, बहुत ध्यान रखते हैं, सब करते हैं, फिर भी बच्चों को माँ-बाप के लिए बहुत प्रेम क्यों नहीं होता?

दादाश्री : यह प्रेम तो, जो बाहर का मोह ऐसा जागृत हो गया है कि उसमें ही चित्त जाता है। पहले मोह बहुत कम था और अभी तो मोह के स्थान इतने अधिक हो गए हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ। और माँ-बाप भी प्रेम के भूखे होते हैं कि हमारे बच्चे हैं, विनय वगैरह रखें।

दादाश्री : प्रेम ही, जगत् प्रेमाधीन है। जितना मनुष्यों को भौतिक सुख की नहीं पड़ी, उतनी प्रेम की पड़ी हुई है। परन्तु प्रेम टकराया करता है। क्या करें? प्रेम टकराना नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : बच्चों में माँ-बाप के प्रति प्रेम बहुत है।

दादाश्री : बच्चों को भी बहुत है! पर फिर भी टकराया करते हैं।

आसक्ति, तब तक टेन्शन

प्रश्नकर्ता : जितनी, लागणी अधिक, उतना उसमें प्रेम अधिक है ऐसी मान्यता है।

दादाश्री : प्रेम ही नहीं होता न! आसक्ति है सारी। इस जगत् में प्रेम शब्द होता नहीं है। प्रेम बोलना वह गलत बात है। वह अंदर आसक्ति होती है।

प्रश्नकर्ता : तो यह लागणी और लागणी का अतिरेक वह समझाने की कृपा कीजिए।

दादाश्री : लागणी और लागणी का अतिरेक वह इमोशनल में जाता है। व्यक्ति मोशन में नहीं रह सकता, इसलिए इमोशनल हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अंग्रेज़ी में फीलिंग्स और इमोशन दो शब्द है।

दादाश्री : परन्तु फीलिंग वह अलग ही वस्तु है और इमोशनल वस्तु अलग है। लागणी और लागणी का अतिरेक इमोशनल में जाता है।

कोई भी लागणी है, आसक्ति है, तब तक व्यक्ति को टेन्शन खड़ा होता है और टेन्शन से फिर चेहरा बिगड़ा रहता है। हममें प्रेम है इसलिए टेन्शन बिना रह सकते हैं। नहीं तो दूसरा व्यक्ति टेन्शन बिना रह सकता नहीं न! टेन्शन होता ही है सभी को, जगत् पूरा टेन्शनवाला है!

लागणियों का प्रवाह, ज्ञानी को

हमें 'ज्ञानी पुरुष' को लागणियाँ होती है। हाँ, जैसी होनी चाहिए उस तरह की होती है। हम उसे 'होम' को छूने नहीं देते। ऐसा नियम नहीं कि अंदर 'होम' में स्पर्श होने देना। लागणी नहीं हो तो मनुष्य ही कैसे कहलाए?

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि लागणी तो हमें भी होती है। आपको जैसी होती है, उससे हमें कुछ ऊँची लागणी होती है, सबके लिए होती है।

दादाश्री : लागणी होती है। हम लागणी बिना के नहीं होते हैं।

प्रश्नकर्ता : पर फिर भी आपको वह लागणी टच नहीं होती।

दादाश्री : जहाँ कुदरती प्रकार से रखनी चाहिए, वहाँ पर ही हम रखते हैं और आप अकुदरती जगह पर रखते हो।

प्रश्नकर्ता : उस डिमार्केशन को ज़रा स्पष्ट कीजिए न!

दादाश्री : 'फ़ॉरेन' की बात फ़ॉरेन में ही रखनी है और 'होम' में नहीं ले जानी। लोग 'होम' में ले जाते हैं। फ़ॉरेन में रखकर और हमें 'होम' में रहना है।

प्रश्नकर्ता : पर उन लागणियों का प्रवाह हो, तब 'उसे' 'फ़ॉरेन' का और 'होम' का डिमार्केशन नहीं होने देता है न? दो भाग अलग पड़ते नहीं है न उस समय?

दादाश्री : 'ज्ञान' लिया हो, उसे क्यों न पड़े?

प्रश्नकर्ता : यह समझना है कि आप किस तरह अप्लाय करते हैं!

दादाश्री : हम लागणी को 'फ़ॉरेन' में रखकर 'होम' में बैठ जाते हैं। और लागणी अंदर घुसती हो तो कहते हैं, 'बाहर बैठ।' और आप तो कहोगे, 'आ भाई, आ, आ, अंदर आ।'

'अंदर छूने न दे', उसके परिणाम...

हमें ये सभी कहते हैं कि, 'दादा, आप हमारे लिए बहुत चिंता रखते हो, नहीं!' वह ठीक है। पर उन्हें पता नहीं कि दादा चिंता को छूने भी नहीं देते। क्योंकि चिंता रखनेवाला मनुष्य कुछ भी कर नहीं सकता, निर्वीर्य हो जाता है। चिंता नहीं रखते, तो सब कर सकते हैं। चिंता रखनेवाला मनुष्य तो खतम हो जाता है। इसलिए ये सब कहते हैं, वह बात सही है। हम सुपरफ्लुअस सबकुछ करते हैं, पर हम छूने नहीं देते।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसे असल में कुछ भी नहीं करते? कोई महात्मा दुख में आ गया तो कुछ करते नहीं हैं?

दादाश्री : करते हैं न! पर वह सुपरफ्लुअस, अंदर छूने नहीं देते। बाहर के भाग का पूरा ही कर लेते हैं। बाहर के भाग में सारे ही प्रयोग पूरे होने देने हैं, पर सिर्फ चिंता ही नहीं करनी है। चिंता से तो सब बिगड़ता है उल्टा। आप क्या कहते हो? चिंता करने को कहते हो मुझे?

छूने दें तो वह काम ही नहीं हो। पूरे जगत् को ही छूता है न! अंदर छूता है इसलिए तो जगत् का काम होता नहीं। हम छूने नहीं देते इसलिए तो काम होता है। छूने नहीं देते इसलिए हमारी सेफसाइड और उसकी भी सेफसाइड। आपको पसंद आया, वैसा छूने न दे वह? आपने तो छूने दिया है न, नहीं?

हमने तो हिसाब देख लिया कि हम छूने दें तो यहाँ निर्वीर्य होता है और उसका काम नहीं होता, और न छूने दें, तो आत्मवीर्य प्रकट होता है और उसका काम हो जाता है।

यह विज्ञान प्रेमस्वरूप है। प्रेम में क्रोध-मान-माया-लोभ कुछ भी होता नहीं है। वह हो, तब तक प्रेम होता नहीं है।

सात्विक नहीं, शुद्ध प्रेम 'यह'

प्रश्नकर्ता : अभी दुनिया में सब लोग शुद्ध प्रेम के लिए व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं।

दादाश्री : शुद्ध प्रेम का ही यह रास्ता है। अपना यह जो विज्ञान है न, किसी भी तरह की, किसी भी प्रकार की इच्छा बिना का है, इसलिए शुद्ध प्रेम का रास्ता यह उद्‌भव हुआ है। नहीं तो होता नहीं इस काल में। पर इस काल में उत्पन्न हुआ, वह गज़ब हुआ है।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध प्रेम और सात्विक प्रेम का ज़रा भेद समझाइए।

दादाश्री : सात्विक प्रेम अहंकार सहित होता है। और शुद्ध प्रेम में अहंकार भी नहीं होता। सात्विक प्रेम में सिर्फ अहंकार ही होता है। उसमें लोभ नहीं होता, कपट नहीं होता, उसमें सिर्फ मान ही होता है। अहम् - मैं हूँ, इतना ही! अस्तित्व का भान होता है खुद को और शुद्ध प्रेम में तो खुद अभेद स्वरूप हो गया होता है।

प्रश्नकर्ता : पर ऐसा है क्या कि किसी भी क्रिया के अंदर फिर वह सात्विक क्रिया हो, रजोगुणी क्रिया हो या किसी भी प्रकार की क्रिया हो तो उस क्रिया में अहंकार का तत्त्व नहीं होता। वह तार्किक प्रकार से सच है?

दादाश्री : नहीं हो सकता। अरे, ऐसा करने जाए तो भूल है। क्योंकि अहंकार के बिना क्रिया ही नहीं होती। सात्विक क्रिया भी नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध प्रेम रखना तो चाहिए न? तो वह अहंकार के बिना धारण किस प्रकार से होगा? अहंकार और शुद्ध प्रेम दो साथ में रह नहीं सकते?

दादाश्री : अहंकार है, तब तक शुद्ध प्रेम आता ही नहीं न! अहंकार और शुद्ध प्रेम दो साथ में नहीं रह सकते। शुद्ध प्रेम कब आता है? अहंकार विलय होने लगे तब से शुद्ध प्रेम आने लगता है और अहंकार संपूर्ण विलय हो जाए तब शुद्ध प्रेम की मूर्ति बन जाता है। शुद्ध प्रेम की मूर्ति ही परमात्मा है। वहाँ पर आपका सभी प्रकार का कल्याण हो जाता है। वह निष्पक्षपाती होता है, कोई पक्षपात नहीं होता। शास्त्रों से पर होता है। चार वेद पढ़ लिए तब वेद इटसेल्फ

बोलते हैं, 'दिस इज़ नोट देट, दिस इज़ नोट देट।' तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं, दिस इज़ देट, बस! 'ज्ञानी पुरुष' तो शुद्ध प्रेमवाले, इसलिए तुरन्त ही आत्मा दे देते हैं!

मात्र दो गुण हैं उनमें। वह शुद्ध प्रेम है और शुद्ध न्याय है। दो हैं उनके पास। शुद्ध न्याय जब इस जगत् में हो, तब समझना कि यह भगवान की कृपा उतरी। शुद्ध न्याय! नहीं तो ये दूसरे न्याय तो सापेक्ष न्याय हैं!

प्रेम प्रकटाए आत्म ऐश्वर्य

करुणा वह सामान्य भाव है और वह सब ओर बरतता रहता है कि सांसारिक दुखों से यह जगत् फँसा है वे दुख किस तरह जाएँ?

प्रश्नकर्ता : मुझे ज़रा प्रेम और करुणा का क्या संबंध है, वह समझना है।

दादाश्री : करुणा, किसी खास दृष्टि से हो, तब करुणा कहलाती है। और किसी और दृष्टि हो तब प्रेम कहलाता है। करुणा कब उपयोग करते हैं? सामान्य भाव से सभी के दुख खुद देख सकते हैं। वहाँ करुणा रखते हैं। इसलिए करुणा यानी क्या? एक प्रकार की कृपा है। और प्रेम, वह अलग वस्तु है। प्रेम को तो विटामिन कहा जाता है। प्रेम तो विटामिन कहलाता है। ऐसा प्रेम देखे न तब उसमें विटामिन उत्पन्न हो जाता है, आत्मविटामिन। देह के विटामिन तो बहुत दिन खाए हैं, पर आत्मा का विटामिन चखा नहीं न?! उसमें आत्मवीर्य प्रकट होता है। ऐश्वर्यपन प्रकट होता है।

प्रश्नकर्ता : वह सहज ही होता है न दादा?

दादाश्री : सहज।

प्रश्नकर्ता : इसलिए उसे उसमें किसी प्रकार का कुछ करना रहता नहीं है।

दादाश्री : कुछ नहीं। यह सब मार्ग ही सहज का है।

गालियाँ देनेवाले पर भी प्रेम

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान के बाद हमें जो अनुभव होता है, उसमें कुछ प्रेम, प्रेम, प्रेम छलकता है, वह क्या है?

दादाश्री : वह प्रशस्त राग है। जिस राग से संसार के राग सारे छूट जाते हैं। ऐसा राग उत्पन्न हो तब संसार में जो भी दूसरे राग सभी जगह लगे हुए हों, वे सब वापिस आ जाते हैं। इसे प्रशस्त राग कहा है भगवान ने। प्रशस्त राग, वह प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है। वह राग बांधता नहीं है। क्योंकि उस राग में संसारी हेतु नहीं है। उपकारी के प्रति राग उत्पन्न होता है, वह प्रशस्त राग। वह सभी रागों को छुड़वाता है।

इन 'दादा' का निदिध्यासन करें न तो उनमें जो गुण हैं न, वे उत्पन्न होते हैं अपने में। दूसरा यह कि जगत् की किसी भी वस्तु की स्पृहा नहीं करनी। भौतिक चीज़ की स्पृहा नहीं करनी है। आत्मसुख की ही वांछना, दूसरी किसी चीज़ की वांछना ही नहीं और कोई हमें गालियाँ दे गया हो, उसके साथ भी प्रेम! इतना हो कि काम हो गया फिर।

'ज्ञानी', बेजोड़ प्रेमावतार

प्रश्नकर्ता : कईबार ऐसा होता है कि सोए हुए हों और फिर अर्धजागृत अवस्था होती है और 'दादा' अंदर बिराज जाते हैं, 'दादा' का शुरू हो जाता है, वह क्या है?

दादाश्री : हाँ, शुरू हो जाता है। ऐसा है न, 'दादा' सूक्ष्म भाव से पूरे वर्ल्ड में घूमते रहते हैं। मैं स्थूल भाव से यहाँ हूँ और दादा सूक्ष्मभाव से पूरे वर्ल्ड में घूमते रहते हैं। सब जगह ध्यान रखते हैं और ऐसा नहीं कि दूसरों के साथ कोई भांजगड़ है।

इसलिए बहुत लोगों को ख्वाब में आया ही करते हैं अपने आप ही, और कुछ तो दिन में भी 'दादा' के साथ बातचीत करते हैं। वे

मुझे कहते भी हैं कि, 'मेरे साथ दादा, आप इस तरह बातचीत करके गए!' दिन में खुली आँखों से उसे दादा कहें और वह सुनता है और वह लिख लेता है वापिस। आठ बजे लिख लेता है कि इतना बोले हैं। वह मुझे पढ़ा भी जाते हैं वापिस।

इसलिए यह सब हुआ ही करता है। फिर भी इसमें चमत्कार जैसी वस्तु नहीं है। यह स्वभाविक है। कोई भी मनुष्य की आवरण रहित स्थिति होती है और थोड़ा कुछ केवलज्ञान को अंतराय करे है उतना आवरण रहा हो और जगत् में जिसकी मिसाल न मिले, वैसा प्रेम उत्पन्न हुआ हो, जिसकी मिसाल न हो वैसा प्रेमावतार हो गया हो, वहाँ सबकुछ ही होता है।

अब निस्पृह प्रेम होता है, पर वह अहंकारी पुरुष को होता है। यानी अहंकार का अंदर उसका एबज़ोर्ब करता है या नहीं करता? करता है। इसलिए उसमें संपूर्ण निःस्पृह होते नहीं है। अहंकार जाए उसके बाद सारा सच्चा प्रेम होता है।

इसलिए ये प्रेमावतार है। वह जहाँ किसीको कुछ भी सहज मन उलझ गया हो, वहाँ खुद आकर हाज़िर!

प्रेम, सभी पर सरीखा

यह प्रेम तो ईश्वरीय प्रेम है। ऐसा सब जगह होता नहीं न! यह तो किसी जगह पर ऐसा हो तो हो जाता है, नहीं तो होता नहीं न!

अभी शरीर से मोटा दिखे उस पर भी प्रेम, गोरा दिखे उस पर भी प्रेम, काला दिखे है उस पर भी प्रेम, लूला-लंगड़ा दिखे उस पर भी प्रेम, अच्छे अंगोवाला मनुष्य दिखे उस पर भी प्रेम। सब जगह सरीखा प्रेम दिखता है। क्योंकि उनके आत्मा को ही देखते हैं। दूसरी वस्तु देखते ही नहीं। जैसे इस संसार में लोग मनुष्य के कपड़े नहीं देखते, उसके गुण कैसे हैं वह देखते हैं, उसी तरह 'ज्ञानी पुरुष' इस पुद्गल को नहीं देखते। पुद्गल तो किसीका अधिक होता है किसी का कम होता है, कोई ठिकाना ही नहीं न!

और ऐसा प्रेम हो वहाँ बालक भी बैठे रहते हैं। अनपढ़ बैठे रहते हैं, पढ़े-लिखे बैठे रहते हैं, बुद्धिशाली बैठे रहते हैं, सभी लोग समा जाते हैं। बालक तो उठते नहीं। क्योंकि वातावरण इतना अधिक सुंदर होता है।

ऐसा प्रेमस्वरूप 'ज्ञानी' का

यानी प्रेम तो 'ज्ञानी पुरुष' का ही देखने जैसा है! आज पचास हज़ार लोग बैठे हैं, पर कोई भी व्यक्ति थोड़ा भी प्रेम रहित हुआ नहीं होग। उस प्रेम से जी रहे हैं सभी।

प्रश्नकर्ता : वह तो बहुत मुश्किल है।

दादाश्री : पर हममें वैसा प्रेम प्रकट हुआ है तो कितने ही लोग हमारे प्रेम से ही जीते हैं। निरंतर दादा, दादा, दादा! खाने का नहीं मिले तो कोई हर्ज नहीं। यानी प्रेम ऐसी वस्तु है यह।

अब इस प्रेम से ही सब पाप उसके भस्मीभूत हो जाते हैं। नहीं तो कलियुग के पाप क्या धोनेवाले थे वे?!

फिर भी रहा फर्क चौदस-पूनम में

मतलब जगत् में कभी भी देखा न हो, वैसा प्रेम उत्पन्न हुआ है। क्योंकि प्रेम उत्पन्न हुआ था, पर उस जगह वीतराग हो गए थे। जहाँ प्रेम उत्पन्न हो वैसी जगह थी, वे संपूर्ण वीतराग थे। इसलिए वहाँ प्रेम दिखता नहीं था। हम कच्चे रह गए, इसलिए प्रेम रहा और संपूर्ण वीतरागता नहीं आई।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि हम प्रेमस्वरूप हो गए पर तब संपूर्ण वीतरागता उत्पन्न नहीं हुई। वह ज़रा समझना था।

दादाश्री : प्रेम मतलब क्या? किंचित् मात्र किसीकी तरफ सहज भी भाव बिगड़े नहीं, उसका नाम प्रेम। यानी संपूर्ण वीतरागता उसका नाम ही प्रेम कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो प्रेम का स्थान कहाँ आया? यहाँ कौन-सी स्थिति में प्रेम कहलाएगा?

दादाश्री : प्रेम तो, जितना वीतराग हुआ उतना प्रेम उत्पन्न हुआ। सूंपर्ण वीतराग और संपूर्ण प्रेम! इसलिए वीतद्वेष तो आप सब हो ही गए हो। अब वीतराग धीरे-धीरे होते जाओ हर एक चीज़ में, वैसे प्रेम उत्पन्न होता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तह यहाँ आपने कहा था कि हमारा प्रेम कहलाता है, वीतरागता नहीं आई, वह क्या है?

दादाश्री : वीतरागता मतलब यह हमारा प्रेम है, तो ऐसे प्रेम दिखता है और इन वीतरागों का प्रेम ऐसे दिखता नहीं है। पर सच्चा प्रेम तो उनका ही कहलाता है और हमारा प्रेम लोगों को दिखता है। पर वह सच्चा प्रेम नहीं कहलाता। एक्ज़ेक्टली जिसे प्रेम कहा जाता है न, वह नहीं कहलाता। एक्ज़ेक्टली तो संपूर्ण वीतरागता हो तब सच्चा प्रेम और हमारा तो चौदस कहलाता है, पूनम नहीं है!!

प्रश्नकर्ता : यानी पूनमवाले को इससे भी अधिक प्रेम होता है?

दादाश्री : उस पूनमवाले का ही सच्चा प्रेम! इन चौदसवाले में किसी जगह पर कमी होती है। इसलिए पूनमवाले का ही सच्चा प्रेम।

प्रश्नकर्ता : संपूर्ण वीतरागता हो और प्रेम बगैर का हो, ऐसा तो होता ही नहीं न?

दादाश्री : प्रेम बगैर तो होता ही नहीं है न वह!

प्रश्नकर्ता : यानी दादा, चौदस और पूनम में इतना फर्क पड़ जाता है, इतना अधिक फर्क ऐसा?

दादाश्री : बहुत फर्क! वह तो अपने लोगों को पूनम जैसा लगता है पर बहुत फर्क है! हमारे हाथ में कुछ है भी क्या तो?! और उनके, तीर्थंकरों के हाथ में तो सभी कुछ है। हमारे हाथ में क्या है? फिर भी हमें संतोष रहता है पूनम जितना! हमारी शक्ति, खुद

के लिए शक्ति इतनी काम कर रही होती है कि पूनम हमें हो गया हो ऐसा लगता है!!

'ज्ञानी', बंधे 'प्रेम से'

प्रश्नकर्ता : अब यह ज्ञान लेने के बाद दो-तीन भव बाकी रहे तो उतने समय तो संपूर्ण करुणा-सहायता करने के लिए तो आप बंधे हुए हैं न?

दादाश्री : बंधे हुए हैं मतलब ही कि हम प्रेम से बंधे हुए हैं। तो आप जब तक प्रेम रखोगे तब तक बंधे हुए हैं। आपका प्रेम छूटा कि हम छूटे। हम प्रेम से बंधे हुए हैं। आपका संसार के प्रति प्रेम झुक गया तो अलग हो जाओगे और आत्मा के प्रति प्रेम रहा तो बंधे हुए हैं। कैसा लगता है आपको? बंधे हुए तो हैं ही न! प्रेम से तो बंधे हुए ही हैं न!

शुद्ध प्रेमस्वरूप, वे ही परमात्मा

अहंकारी को खुश करने में कुछ समय लगे ऐसा नहीं है, मीठी-मीठी बातें करो तो ही खुश हो जाता है और ज्ञानी तो मीठी बातें करो तब भी खुश नहीं होते। कोई भी साधन, जगत् में ऐसी कोई चीज़ नहीं कि जिससे 'ज्ञानी' खुश हों। मात्र अपने प्रेम से ही खुश होते हैं। क्योंकि वे सिर्फ प्रेमवाले हैं। उनके पास प्रेम के अलावा कुछ है ही नहीं। पूरे जगत् के साथ उनका प्रेम है।

'ज्ञानी पुरुष' का शुद्ध प्रेम जो दिखता है, ऐसे उघाड़ा दिखता है, वही परमात्मा है। परमात्मा, वह दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है। शुद्ध प्रेम जो दिखता है, जो बढ़ता नहीं, घटता नहीं, एक समान ही रहा करता है, उसका नाम परमात्मा, उघाड़े-खुल्ले परमात्मा! और ज्ञान वह सूक्ष्म परमात्मा, वह समझने में देर लगेगी। इसलिए परमात्मा बाहर ढूंढने जाना नहीं है। बाहर तो आसक्ति है सारी। जो प्रेम बढ़े नहीं, घटे नहीं, वह प्रेम है, वे ही परमात्मा हैं!!!

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक

कल्प : कालचक्र

गोठवणी : सेटिंग, प्रबंध, व्यवस्था

नोंध याद : अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लम्बे समय तक रखना, नोट करना

नियाणां कामना : अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक वस्तु की करना

धौल : हथेली से मारना

सिलक : राहखर्च, पूँजी

तायफ़ा : फज़ीता

उपलक : सतही, ऊपर ऊपर से, सुपरफ्लुअस

कढ़ापा : कुढ़न, क्लेश

अजंपा : बेचैनी, अशांति, घबराहट

राजीपा गुरजनों की कृपा और प्रसन्नता

सिलक : जमापूंजी

पोतापणुं : मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन

लागणी : भावुकतावाला प्रेम, लगाव

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
54. आप्तवाणी - 14 (भाग-1)
55. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट **www.dadabhagwan.org** पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : 9328661166, 9328661177
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	9810098564	**बेंगलूर**	9590979099
कोलकता	9830080820	**हैदराबाद**	9885058771
चेन्नई	7200740000	**पूणे**	7218473468
जयपुर	8890357990	**जलंधर**	9814063043
भोपाल	6354602399	**चंडीगढ़**	9780732237
इन्दौर	6354602400	**कानपुर**	9452525981
रायपुर	9329644433	**सांगली**	9423870798
पटना	7352723132	**भुवनेश्वर**	8763073111
अमरावती	9422915064	**वाराणसी**	9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 722 722 063

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 421127947

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 81129229

www.dadabhagwan.org

शुद्ध प्रेम स्वरुप, वही परमात्मा

'ज्ञानी पुरुष' का शुद्ध प्रेम जो दिखाई देता है, यों खुला दिखाई देता है, वही परमात्मा है। परमात्मा अन्य कोई वस्तु है ही नहीं। जो शुद्ध प्रेम दिखाई देता है, जो बढ़ता नहीं, घटता नहीं, एक समान ही रहता है, वही परमात्मा है, उघाड़े-खुल्ले परमात्मा! और ज्ञान, वह सूक्ष्म परमात्मा है। उसे समझने में देर लगेगी। परमात्मा को ढूंढने बाहर नहीं जाना है। बाहर तो आसक्ति है सारी।

\- दादाश्री

Price ₹20